नामदीप

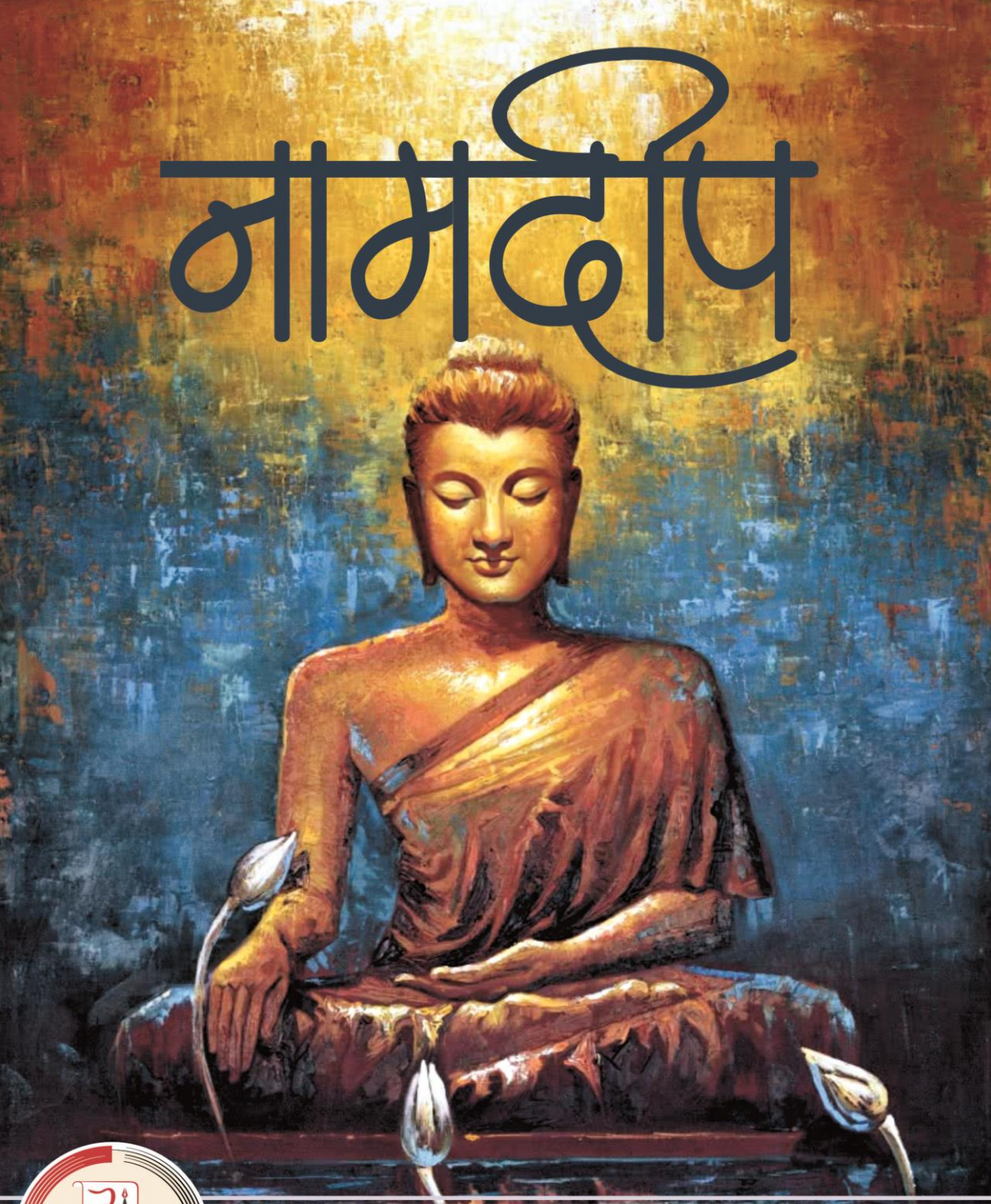

ए.एन.यी. सिन्हा

अन्तरा-शब्दशक्ति
प्रकाशन

नामदीप

आलेख

ए.एन.पी. सिन्हा

अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन
वारासिवनी, मध्यप्रदेश

ISBN - " 978-93-5372-072-8"

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

संपादक- प्रीति समकित सुराना

तकनीकी संपादक - संदीप कुमार सोनी

मुख्य कार्यालय - १५ नेहरू चौक, वारासिवनी, जिला बालाघाट (म.प्र.) ४८१३३१

दूरभाष- (कार्या.) ०७६३३-२५३१५६

मोबाईल- ६४२४७६५२५६

अणुडाक - antrashabdshakti@gmail.com

अंतरताना - www.antrashabdshakti.com

प्रथम संस्करण - २०१६, **ए.एन.पी.सिन्हा**

आवरण चित्र - **संदीप सोनी, वारासिवनी**

मूल्य - ८०.०० रूपये

मूद्रक- **शैलू कम्प्यूटर्स, वारासिवनी**

NAAMDEEP BY A.N.P. SINHA

वैधानिक चेतावनीः- इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकॉपी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम में अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरूत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई है। अतः प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु लेखक जिम्मेदार है। प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र, भाषाशैली एवं स्थान सभी लेखक की कल्पना है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

नम्र-निवेदन

'वंदौं गुरु पद कंज कृपा सिंधु नर रूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु वचन रवि कर निकर।।'

श्री गुरु महाराज जी की कृपा से उनकी वंदना करते हुए इस प्रयास का शुभारंभ करने की कोशिश कर रहा हूं कि उस परम पिता परमेश्वर के गुणों की महिमा मैं भी कुछ लिखूं।

मैं जानता हूँ, मुझमे वह शक्ति नहीं है कि मेरी लेखनी धारा प्रवाह शब्दों को एकत्र कर एक ऐसी माला बना सके जो सुगंध से भरपूर हो परन्तु फिर भी मेरा प्रयास है कि माला न सही, एक पुष्प हीं मेरे प्रभु के चरणों में अगर पहुंच सके तो मैं अपने आप को धन्य समझूंगा। परमपिता परमात्मा के नाम की संत महात्माओं के द्वारा सृष्टि के उदगम के साथ हीं साथ गाई जाती रही है। उसी नाम की महिमा के कुछ शब्दों को एक छोटे से कागज के टुकड़े पर एकत्र करने का साहस एक दीन बालक के रूप में कर रहा हूं तथा प्रभु से प्रार्थना है कि जो भी त्रुटि इस संकलन में हुई है उसे वे झमा करेगें।

'नामदीप' रूपी इस संकलन के पठाकों से भी मेरा नम्र निवेदन है कि इसके पठन से यदि उनको कुछ लाभ मिले तो उसे ग्रहण करने में संकोच न करें।

सामान्यतः हम सभी मनुष्यों के अंदर अभिमान सूक्ष्म रूप से प्रवेश कर जाता है और वह ऐसा चोर है कि सदियों से चोरी करता आ रहा है-छोटी मोटी चीजों की नहीं परन्तु बड़ी बड़ी चीजों की। जो प्रसन्नता, जो आनंद मनुष्य को मिल सकता है, उसकी वह चोरी करता है। ज्ञान से मनुष्य

को अज्ञानता में ले जाता है। समझ की चोरी करता है और लोग इस अंधेरे में, इस भूल भुलैया में भटकते हुए भी अभिमान करते हैं।

अतः मेरा पाठकों से एक बार पुनः नम्र निवेदन है कि शांत मन से, शांत चित्त से इस संकलन को पढ़े ताकि परमात्मा के 'नाम' के गूढ़ रहस्य तक पहुंचने में शायद यह कोई मदद कर पाए।

–अलख निरंजन

नामदीप

इस संसार में सिर्फ मनुष्य हीं एक ऐसा प्राणी है जो प्रश्न कर सकता है-क्या यह जगत सत्य है? यदि सत्य है तो यहां इतना दुःख और भय क्यों? और यदि सत्य नहीं है तो फिर सत्य क्या है? आध्यात्म का प्रारंभ यहीं से होता है और इस प्रश्न के उत्तर में हीं इसकी इति श्री होती है।

'वृहदारण्यकोपनिषद' के आधार पर इसी सत्य को यथार्थ रूप में जानने की चेष्टा करना और अंत में जान लेना मनुष्य जन्म की सफलता का एकमात्र प्रमाण है। उपनिषद् में वर्णित है कि यह सत्य एक 'अवर्णित अक्षर' में छिपा है। याज्ञवल्क्य जी ने गार्गी को समझाते हुए इस प्रकार कहा-

'स होवाचैतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्र स्वमदीर्घमलोहित
मस्नेमच्छायमत्मोऽवाववय्वना काशमसङग्मरसमगन्धम चक्षुष्कम
श्रोतमवागमनोऽतेजस्कम प्राणमुखममात्र मनन्तरम बाह्यं न तदश्नाति किंचन न
तदश्नाति कश्चन।'-(वृहदारण्यकोपनिषद ३/८/८)

अर्थात, हे गार्गी अंतर्यामी रूप अव्यक्त का अनुष्ठान यही वह 'अक्षर' है, इस अविनाशी शुद्ध ब्रह्म का वर्णन ब्रह्मवेत्तागण इस प्रकार करते हैं- यह स्थूल से भिन्न, सुक्ष्म से भिन्न, ह्रस्व से भिन्न, दीर्घ से भिन्न, लोहित से भिन्न, स्नेह से भिन्न, प्रकाश से भिन्न, अंधकार से भिन्न, वायु से भिन्न, आकाश से भिन्न, संङगरहित, रसरहित, गंधरहित, चक्षुरहित, श्रोतरहित, वाणीरहित, मनरहित, तेजरहित, प्राणरहित, मुखरहित, परिमाणरहित, छिद्ररहित और देश, काल, वस्तु आदि परिच्छेद से रहित सर्वव्यापी अपरिच्छिन्न है। वह कुछ भी खाता नहीं, और उसे भी कोई खाता नहीं, इस प्रकार वह सब विशेषणों से रहित एक हीं अद्वितीय है।

इस प्रकार समस्त विशेषणों का ब्रह्म में निषेध करके अब उसका नियंतापन बतलाते हुए याज्ञवल्क्य जी कहते हैं-

'एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी सुर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः।
एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः।
एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी निमेषा मुहूर्ता अहोरात्राण्यधर्मासा मासा
ऋतवः संवत्सरा इति विधृतास्तिष्ठन्त्येतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी
प्राच्योऽन्या नद्यःस्यन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्या यां यां च दिशमनु।

एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी ददतो मनुष्याः प्रशंसन्ति यजमानं देवा दवी पितरोऽन्वायत्ताः'। -(वृहदारण्यकोपनिषद ३/८/९)

हे गार्गी, इस प्रसिद्ध 'अक्षर' की आज्ञा में सूर्य और चंद्रमा नियमित रूप से वर्तते हैं। हे गार्गी, इस प्रसिद्ध 'अक्षर' की आज्ञा से हीं स्वर्ग और पृथ्वी हाथ में रखें हुए पाषाण की तरह मर्यादा में रहते हैं। हे गार्गी, इस प्रसिद्ध 'अक्षर' की आज्ञा में रहकर हीं निमेष, मुहूर्त, दिन, रात्रि,पक्ष, मास, ऋतु और संवत्सर इस काल के अवयवों की गणना करने वाले सेवक की तरह नियमित रूप से आते-जाते हैं। हे गार्गी, इस प्रसिद्ध 'अक्षर' के शासन में रहकर ही पूर्ववाहिनी गंगा आदि नदियाँ श्वेत हिमालय आदि पहाड़ों में से निकलकर समुद्र की ओर बहती है तथा पश्चिमवाहिनि सिंधु आदि और अन्यान्य दिशाओं की ओर बहती हुई दूसरी नदियां इसी 'अक्षर' के नियंत्रण में आज तक वैसे हीं बहती है। हे गार्गी, इस प्रसिद्ध 'अक्षर' की आज्ञा से मनुष्य दाताओं की प्रशंसा करते हैं और इंद्रादि देवगण यजमान और पितृगण दर्वी के अनुगत है।

इसके बाद याज्ञवल्क्य जी फिर कहते हैं-हे गार्गी, इस 'अक्षर' के बिना जाने यदि कोई पुरूष इस लोक में हजारों वर्षों तक देवताओं को उद्देश्य करके यज्ञ करता है, व्रतादि, तप करता है तो भी उस अक्षय परम कल्याण को प्राप्त नहीं होता। हे गार्गी, जो पुरूष इस 'अक्षर' को नहीं जानकार (अक्षर को जानने के पूर्व हीं) इस लोक से मृत्यु को प्राप्त होता है वह कृपण (दीन दया के योग्य) है और हे गार्गी, जो इस 'अक्षर' को जानकर इस लोक में मरण को प्राप्त होता है वह वृह्मवित अर्थात मुक्त हो जाता है।

'यो वा एतदक्षरं गार्ग्य विदित्वास्मिनल्लोके जुहोति यजते तापस्तप्यते बहूनि वर्ष सहस्तान्यन्त वदेवास्य तदभवति। यो वा एतदक्षरं गार्ग्य विदित्वास्मिनल्लो-कत्प्रैति कृपणऽध य एतदक्षरं गार्गी विदित्वास्मिनल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः।-(वृहदारण्यकोपनिषद ३/८/१०)

याज्ञवल्क्य जी ब्रह्म रूपी सत्य जो 'अक्षर' में समाया हुआ है उसकी उपाधि रहित स्वरूप बतलाते हुए कहते हैं -

'तद्वा एतदक्षरं गार्ग्य द्वष्टं द्रष्ट्रश्रुतँ श्रोतमतं मन्त्रविज्ञातं विज्ञातृ नान्यदतोऽस्ति श्रोतृ नान्यदतोऽस्ति मन्तृ नान्यदतोऽस्ति विज्ञात्रेतस्मिन्तु खल्वक्षरे गार्ग्ा काश ओतश्चप्रोतश्चेति।-(वृहदारण्यकोपनिषद ३/८/११)

अर्थात् हे गार्गी, यह प्रसिद्ध 'अक्षर' किसी को नहीं दिखता, पर यह सबको देखता है। इसकी आवाज इन कानों से कोई नहीं सुन सकता, परन्तु यह सबकी सुनता है। यह किसी की धारणा में नहीं आता परन्तु यही सबका मन्ता है। कोई इसे बुद्धि से नहीं जान सकता, परंतु यही सबका विज्ञाता (जानने वाला) है। इससे भिन्न द्रष्टा नहीं है, इससे भिन्न श्रोता नहीं है, इससे भिन्न कोई मन्ता नहीं है और इससे भिन्न कोई विज्ञाता नहीं है। हे गार्गी, वह व्याकृत आकाश इसी प्रसिद्ध 'अक्षर' अविनाशी ब्रह्म में हीं ओतप्रोत है।

भगवान श्री कृष्ण ने गीता में इस 'अक्षर' को 'अव्यक्तोक्षर' कहकर इस प्रकार समझाया-

'अव्यक्तोऽक्षर' इत्युक्तस्तमाहु परमांगतिम।
य प्राप्य न निवर्तन्ते तद्वाम परमं मम। -(अध्याय ८/२१)

अर्थात् जो अव्यक्त 'अक्षर' (नाम) कहा गया है उसी को परमगति कहते हैं तथा जिसे प्राप्त होकर जीव फिर नहीं लौटते, वह मेरा परम धाम है। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुए यह भी कहा कि

'मतः परतरं नान्यत्किन्चिदस्ति धनजंय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इवं।'- (अध्याय ७/७)

अर्थात् हे धनंजय, मुझसे बढ़कर अन्य कोई भी जगत् का कारण नहीं है। सूत में पिरोयी मणियों की तरह यह समस्त जगत मुझमें पिरोया है।

अर्जुन ने जब भगवान् का विराट रुप देखा तो उसने व्यवहारिक अनुभूति कर अपने अनुभव को इस प्रकार व्यक्त किया-

'त्वमक्षरं परम वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम।
त्वमव्ययः शाश्वत धर्म गोप्ता
सनातनस्त्वं पुरूषो मतो में।'- (अध्याय ११/१८)

अर्थात् तुम हीं जानने योग्य परम 'अक्षर' (अविनाशी परब्रह्म) हो, तुम हीं इस विश्व के परम आश्रय हो, तुम हीं अविनाशी हो, नित्य धर्म के रक्षक हो तथा तुम हीं सनातन पुरुष हो-ऐसा मेरा मत है।

इसी 'अक्षर' को 'शब्द' के रूप में गुरु नानकदेव जी ने बतलाया कि-

'शब्द हीं धरती, 'शब्द' हीं आकाश, शब्द हीं शब्द भयो प्रकाश।

सकली श्रृष्टि शब्द के पाछे, नानक 'शब्द' घटाघट आछे।'

अर्थात् 'शब्द' हीं धरती है और शब्द ही आकाश है। प्रकाश के रूप में यह 'शब्द' हीं फैला हुआ है। सारी श्रृष्टि इसी 'शब्द' के पीछे पैदा हुई है तथा यह शब्द सभी प्राणियों के हृदय में स्थित है।

बाइबल में इस 'अक्षर', इस शब्द को इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

"ln the beginning, there was a 'WORD', the word was with the God and the WORD was the GOD"-

अर्थात, आदि में एक 'शब्द' हीं था, यह 'शब्द' ईश्वर के साथ जुड़ा था तथा यह 'शब्द' हीं ईश्वर था। यानि 'शब्द' और ईश्वर अलग अलग नहीं है, दोनों एक ही हैं या 'नाम' और 'नामी' दोनों एक ही हैं तथा वे एक दूसरे से जुड़े हैं। उदाहरण के रूप में इसे यूं समझा जा सकता है कि अगर मेरा नाम सुरेश है और मैं अपने कमरे में बैठकर आराम कर रहा हूं और कोई व्यक्ति मुझे खोज रहा हो, तो वह मेरा नाम लेकर कमरे के पास आकर पुकारेगा तभी मैं उसका उत्तर दे सकूंगा क्योंकि मेरे साथ ही मेरा नाम सुरेश जुड़ा है, यह मुझसे अलग नहीं है। जहां जहां मैं जाऊंगा, मेरा नाम मेरे साथ होगा। ठीक इसी प्रकार परमात्मा के साथ उनका 'नाम', वह 'शब्द', वह 'अक्षर' जुड़ा है। यह 'नाम', यह 'शब्द', यह 'अक्षर' सभी के घट मे स्थित है। सभी धर्म ग्रन्थों में इसकी अलग अलग रूप से चर्चा की गई है। कहीं इसे 'सत्यनाम', 'अखंडनाम', 'अमृतनाम', 'पावननाम', 'ओंकार बिन्दु', 'हरिनाम', 'अव्यक्तोऽक्षर', 'महामंत्र' कहा गया तो कहीं 'गैवी आवाज', 'शब्द ब्रह्म', 'पाक नाम' और 'गोल्डेन' या 'होलीनेम' कहा गया।

इस 'शब्द' की महिमा सभी संत महात्माओं ने, देवी देवताओं ने गाया तथा मानव मात्र के लिए इशारा भी किया कि इसे सभी जान सकते हैं क्योंकि परमात्मा का 'नाम' कल्याणकारी है तथा सभी विकारों को नाश करने वाला है। यह पवित्र है, यह पावन है। इससे उत्तम कुछ भी नहीं, कोई भी नाम नहीं। नानकदेव जी ने इशारा किया है कि–

'एको सुमरो नानका, जलथल रहो समाय,
दूजा काहे सुमरिए, जन्मे ते मर जाए।
मन मंदिर तन भेष कलन्दर, घट हीं तीर्थ नावां,
एक 'शब्द' मेरे प्राण बसे, बहुरि जन्म नहीं आवा।'

ठीक हीं कहा है कि मेरा प्राण इसी शब्द में बसा है। जब यह 'शब्द' शरीर से निकलेगा तो स्वतः प्राण निकल जाएगा और फिर यह जन्म जाता रहेगा।

तुलसीदास जी ने रामायण में वर्णन किया है कि 'नाम' और नामी एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं। परमात्मा का रूप उस 'नाम' में छिपा है, उनका रूप उनके नाम से अलग नहीं है तथा उनके नाम का सुमिरन करने से जीवन में, अंदर हृदय में तथा बाहर में प्रकाश हीं प्रकाश हो जाता है–

'समुक्षत सरिस नाम अरू नामी,
प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी।
नाम रूप दुई ईस उपाधी,
अकथ अनादि सुसामुझि साधी।
रूप विशेष नाम विनु जाने,
करतल गत न परहिं पहिचाने।
सुमिरिअ नाम रुप बिनु देखें,
आवत हृदय स्नेह विशेषे।
राम नाम मनिदीप धरु, जीह देहरी द्वार,
तुलसी भीतर बाहेसुॅ जौंचाहसि उजिआर।'

तुलसीदास जी ने इसे और भी सरलता से समझाने का प्रयत्न किया है तथा लिखा है कि–

'नाम रूप गतिअकथ कहानी,
समुझत सुखद न परति बखानी।
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी,
उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी।'

परमात्मा के 'नाम' और 'रूप' का वर्णन अकथनीय है, समझने में वहुत सुखद है, सुख देने वाला है परन्तु बखान में नहीं आता। परमात्मा के अगुन और सगुन दोनों के बीच 'नाम' हीं ऐसा है जो दोनों के भेद को हमारे समझ खोल देता है और मनुष्य अगुन रूप में तथा सगुन रूप में परमात्मा को पहचान लेता है, उनका साक्षात्कार करता है।

इसी 'पावन–नाम' को 'महामंत्र' के रूप में शंकर द्वारा जपने की बात तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा–

'महामंत्र जोई जपत महेशु,
काशी मुक्ति हेतु उपदेसू।
महिमा जासू जान गणराऊ,
प्रथम पुजिअत नाम प्रभाऊ।

इसी नाम के प्रयास से गणेश जी प्रथम पूजे जाते हैं। इस अखंड नाम का सुमिरन प्रभु स्वयं भी इस पृथ्वी पर आकर समय के सद्गुरु के शरण में जाकर ब्रह्मविद्या (ज्ञान) को जानकर किया। चूंकि अवतार के रूप में पृथ्वी पर आकर राम, कृष्ण आदि-आदि ने भी अपने जीवन को परम पिता परमात्मा के अनादि 'नाम' से जोड़ा, इससे 'नाम' के सबसे बड़ा होने का प्रमाण मिलता है। तभी तो तुलसीदास जी ने कहा कि राम इस पृथ्वी पर आकर एक अहिल्या को तारे परन्तु उनका 'नाम' सुमिरणे से पता नहीं कितने कोटि जीवों का उद्धार हुआ।

'राम एक तापस तिय तारी,
नाम कोटि खल कुमति सुधारी।'

परमात्मा के नाम का ज्ञान पाकर उनका सुमिरण महेश ने किया, प्रह्लाद ने किया, नारद ने किया, ध्रुव और हनुमान ने किया। यह पावन 'नाम' राम से भी बड़ा है, कृष्ण से भी बड़ा है और पूरा ब्रह्माण्ड हीं 'नाम' में छिपा है। तभी तो तुलसीदास जी ने अनुभव करने के पश्चात् वर्णन किया-

'ब्रह्म राम ते नाम बड़, वर दायक वर दानि,
रामचरित सत कोटि महँ, लिए महेश जियँ जानि।'
नारद जानेऊ नाम प्रतापू,
जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू।
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसू,
भगत सिरोमणि ये प्रह्लादु।
ध्रुव सगलानि जपेऊ हरिनाऊ,
पायऊ अचल अनुपम हाऊ।
सुमरि पवन सुत पावन नामू,
अपने बस करी राखे रामू।'

इस पावन नाम का सुमिरण कर हनुमान अपने प्रभु के इतने प्रिय हो गए कि ऐसा प्रगट होने लगा कि भगवान् राम उनके बस में हैं।

नाम की महिमा कहां तक कही जाय, इस अनादि अनन्त के गुणगान में कहा गया कि राम ने भी इस नाम का गुण गाते गाते कहा कि इसका कोई छोर नही, उसके महिमा का कोई अंत नहीं है। उस नाम की महिमा सभी ने गाई-

'कहौं कहां लगि नाम बड़ाई, राम न सकहिं नाम गुण गाई।'

अपने अपने अनुभवों के आधार पर कागज पर उस महिमा को, उसके गुणों को सभी ने प्रगट किया परन्तु अंत में यही लिखा कि परमात्मा के नाम के गुणों का बखान असीमित है-यह एक ऐसा समुद्र है जिसमें सभी भक्त डूबना चाहते हैं, अनुभव प्राप्त करना चाहते हैं परन्तु उसका अंत नहीं पाते हैं। ठीक हीं तो है, भला अनन्त की, असीम की कोई सीमा तो है नहीं, यह पावन नाम तो कल्पवृक्ष की तरह है जो हमेशा कल्याण करता है। अधम से अधम जीव को पूज्यनीय बना देता है। रत्नाकर ऐसे डाकू को बाल्मीकि ऐसे ब्रह्म के समान बना दिया। गनिका, गीध, अजामिल ऐसे पता नहीं कितने करोड़ पतितों को ब्रह्म में मिला दिया।

'नामु राम को कल्पतरू, कलि कल्याण निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग ते, तुलसी तुलसीदास।

यह 'नाम' का हीं प्रताप है कि जो इसका जितना हीं पान करता है, उतना ही अधिक भक्ति में लीन होता चला जाता है और परमात्मा का कृपा पात्र बनता है। सांसारिक रूप से किसी चीज के अधिकाई से जैसे अधिक खाना, अधिक पीना, अधिक सुख, अधिक दुखः, इत्यादि इत्यादि से मनुष्य की स्थिति असंतुलित होती है, परन्तु परमात्मा के 'पवन नाम' का जितना अधिक सुमिरण किया जाए-यह मनुष्य की स्थिति सुधारता, ठीक करता चला जाता है और परमात्मा के करीब शनैः शनैः पहुँचता चला जाता है। राम के 'नाम' का, परमात्मा के 'नाम' का यही प्रभाव है। संतो से, पुराणों व उपनिषदों से 'नाम' के प्रभाव का अनेक उदाहरण मिलता है।

'राम नाम कर अमित प्रभावा, संत पुराण उपनिषद गावा।'

यह ध्यान देने योग्य बात है, विचार करने की बात है कि उपरोक्त सभी व्यक्तव्य यही प्रमाणित करते हैं कि ईश्वर व ईश्वर का नाम श्रृष्टि के आदि से हीं एक दूसरे के साथ हैं। श्रृष्टि की रचना होने के बाद जो भी जीव मनुष्य रूप में इस धरा धाम पर आए उनके शरीरिक पहचान के लिए

नामकरण किया गया। यह नाम उनके पृथ्वी पर आने से लेकर (नामकरण के पश्चात) पृथ्वी पर आखरी स्वास के रहने तक उनके साथ हीं साथ रहा और उनके जाने के पश्चात यह नाम उनका यादगार बनकर रह गया। ईश्वर भी जब जब इस पृथ्वी पर अवतरित हुए, उनका भी सांसारिक नामकरण किया गया और पृथ्वी पर पहचान के लिए उनके शरीर को एक नाम दिया गया। ये भी जब तक पृथ्वी पर रहे, इसी नाम से पुकारे गए और उनके जाने के पश्चात् आज भी उनके शरीरिक नाम से हीं हम उन्हें पुकारते हैं। परन्तु गूढ़ रहस्य, जो विचारणीय है वह यह है कि उनके शरीर के अंदर भी जो 'अक्षर' रूप में विराजमान रहा, जिसके शरीर के अंदर में रहने तक शरीर क्रियाशील रहा, हमें उस 'नाम', उस 'अक्षर', उस 'शब्द' की पहचान करनी है। यह 'नाम' अपने 'नामी' के साथ शरीर के पूरा होते ही फिर क्षितिज में विलीन हो जाता है। शरीर का नाम एक पहचान का नाम है, उसका गुणवाचक नाम है-वह उसका असली नाम, आदि नाम नहीं हो जाता। यह असली नाम तो वही है जो सूक्ष्म रूप में ('नाम' रूप में) मनुष्य को जीवन देने के लिए कुछ समय के लिए उसके शरीर के साथ रहता है और फिर चला जाता है।

उदाहरण स्वरूप मान लिया जाय एक आदमी जिसका शारीरिक नाम प्रताप है, एक कार में बैठ कर उस कार को चला रहा है। जब तक वह कार में बैठा है और कार चल रहा है, उसका नाम कार नहीं हो जाता, उसे कार कहकर हम नहीं पुकारते, कार के नाम से पुकारने पर प्रताप नहीं सुनता। वह कार का चालक बने या वायुयान का, उसका नाम प्रताप हीं हर हाल में रहता है। ठीक इसी प्रकार अगर हम अपने शरीर को एक कार समझ लें और उस आदि 'नाम' को इस शरीर को चलाने बाला तो वह छिपा 'नाम' प्रताप नहीं कहलायेगा, प्रताप के नाम से नहीं जाना जाएगा बल्कि उसका जो 'नाम' है सो उसके साथ है। वह अपने हीं नाम से जाना जाएगा। वह 'नाम' क्या है? यही 'नाम' का रहस्य है और इसी 'नाम' के रहस्य को जानने के लिए संत महात्माओं ने, धर्म ग्रन्थों ने, वेद पुराणों ने मनुष्य के समक्ष बड़े बड़े आकार के ग्रंथ बनाकर रखा और समझाया भाँति-भाँति से, 'नाम' की महिमा गाकर बताया कि मनुष्य इस ओर आकर्षित हो और 'नाम' रूपी खजाने के साथ जुड़े और आनन्द की प्राप्ति करे।

भगवान राम ने बालि के वध के पश्चात रोती विलखती तारा को समझाते हुए इसी विषय पर प्रकाश डाला और ज्ञान की ज्योति जलाकर तारा को शांत किया। जब तारा प्रभु राम से प्रार्थना करती है कि मैं अपने पति के बिना कैसे रहूंगी, आप इसे जीवित कर दें तो प्रभु राम समझाते हैं कि हे तारा, अगर यह शरीर जो पृथ्वी पर लेटा है- यही बालि है तो इसे उठाकर ले जाओ, रोती क्युं हो? परन्तु अगर बालि से तुम्हारा तात्पर्य उसके शरीर के अन्दर सूक्ष्म रूप से छिपे उस 'नाम' से है जो शरीर से निकल गया, तो वह 'नाम' तो मरा नहीं है, वह 'अक्षर' तो आज भी जीवित है, वह अपने नामी के साथ है, केवल इस शरीर में नहीं है।

अतः जिस वस्तु के कारण, जिस वस्तु के होने से बालि जीवित था- वह तो बराबर अजर, अमर और अविनाशी है, अतः तारा तू रो मत। यह तू माया के वशीभूत रो रही है। तारा इस ज्ञान से तृप्त हुई और प्रभु के चरणों में झुक गई।

'तारा विकल देखि रघुराया,दिन्ह ज्ञान हर लीन्हीं माया।'

मनुष्य परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ रचना है और यह पृथ्वी रूपी कर्मभूमि हीं वह सर्वश्रेष्ठ स्थान है जहाँ मनुष्य के पूर्ण तत्व प्राप्त करने की सर्वाधिक संभावना है। मनुष्य योनि की प्राप्ति बड़े भाग्य से होती है क्यूकि इसी शरीर में ईश्वर दर्शन कर मनुष्य शाश्वत शांति की प्राप्ति कर सकता है। मनुष्य के शरीर में प्रभु ने हमें एक स्वर्णिम अवसर प्रदान किया है कि जिसमें हम परमात्मा की भक्ति कर सकते हैं। ईश्वर ने भक्ति कि शुरुआत करने के लिए जीता जागता मंदिर भी हमारे अंतरतम में निहित कर दिया है जिसमें वे स्वयं विराजमान हैं। ईश्वर के चार अत्यन्त सूक्ष्म एवं वास्तविक रूपों की व्याख्या जो चार वेदों में अलग अलग की गई- 'ज्योति ब्रह्म', 'नाद ब्रह्म', 'अमृत तत्व' एवं 'शब्द ब्रह्म', उसका रहस्य अपने अंतरतम में प्रवेश कर मनुष्य इसी जीवन में पा सकता है। और इस तरह मनुष्य जीवन के रहस्य जो 'आत्म तत्व' का साक्षात्कार करना है, पूरा हो सकता है। मनुष्य का हृदय एक असीम वृत है जिसकी परिधि कहीं भी नहीं है लेकिन जिसका केंद एक स्थान में निश्चित है, ठीक उसी प्रकार उसके अंदर निहित 'परम तत्व' एक ऐसा असीम वृत है, जिसकी परिधि कहीं भी नहीं है परन्तु जिसका केन्द्र सर्वत्र है। परमात्मा मनुष्य के हृदय में है, हृदय में प्यास भी लगती है कि उस परमात्मा को तत्व रूप से

जाना जाय, पर प्रश्न है कि हृदय में झांका किस तरह जाए? अपने हृदय में झांकना एक क्रिया है और इसी को 'तत्व ज्ञान' कहते हैं। यह 'तत्व ज्ञान' इतना पवित्र और इतना पूर्ण है कि इस ज्ञान से प्रस्फुटित एक चिंगारी मात्र भी इतनी पावन और अपने में पूर्ण है कि जिससे भी यह टकराती है उसको पूर्ण बना देती है।

मनुष्य सोचता है कि वह बहुत चतुर है, परन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि वह यह नहीं जानता, एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात को नहीं जानता कि वह इस संसार में क्यों आया है? अतः अब समय है, हमें स्वयं विचार करना है कि हम अपने, अंदर मौजूद उस ज्ञान (जो हमारा जीवन आधार है) से कब तक अनभिज्ञ रहना चाहते हैं। इस अनभिज्ञता को दूर करने का भाव भी स्वतः अपने अंदर से हीं उठता है परन्तु मृग मरीचिका की भाँति हम समझ बैठते हैं कि यह वाह्य जगत की ध्वनि है। इसी कारण, इसी दिशाभ्रम के कारण, मनुष्य अपने अंदर जाने का मार्ग खोजने के बजाय मान्यता प्राप्त स्थानों की परिक्रमाएँ करना प्रारम्भ करता है। प्रार्थनाएँ एवं धर्मग्रंथों का पठन पाठन प्रारम्भ करता है, शब्दों के जाल में पड़कर उनका जाप करता है, यज्ञ, हवन, दान, व्रत, उपवास और मौन धारण करता है, तप और साधना, दिखाऊ एवं शोभायुक्त कर्म और शोभायुक्त भक्ति करता है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं पठन पाठन, जप, तप, यज्ञ, हवन इत्यादि के विपक्ष में प्रचार कर रहा हूं परन्तु सिर्फ यह कहना है कि संतो ने इसे भक्ति के समान स्तर का स्थान नहीं दिया है। स्वयं भगवान राम ने अयोध्या वासियों को मनुष्य जीवन और उसके रहस्य के बारे में समझाते हुए कहा है कि

'कहहु भगति पथ कवन प्रयासा, जोग न मख जप तप उपवासा।'

अर्थात् भक्ति मार्ग पर चलने के लिए किसी प्रयास की जरूरत नहीं है। न इसके लिए यज्ञ करना है, न जप, न तप और न हीं उपवास की जरूरत है।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को समझाते हुए इस प्रकार कहा–

'यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदक, तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।'
(अध्याय २६४६)

अर्थात् सब ओर से धरती के जलमग्न होने पर छोटे छोटे जलाशयों में मनुष्य का जितना प्रायोजन रहता है, अच्छी तरह ब्रह्म को जानने बाले ब्राह्मण का सारे वेदों में उतना हीं प्रयोजन रहता है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार बड़े जलाशय के प्राप्त हो जाने पर जल को छोटे जलाशयों की आवश्यकता नहीं रह जाती, उसी प्रकार ब्रह्मानंद की प्राप्ति हो जाने पर आनन्द के लिए वेदों की आवश्यकता नहीं रह जाती। परमात्मा का श्नामश परमात्मा तक पहुंचने का, ब्रह्मानंद की अनुभूति का एक माध्यम है जिसे संतो ने इस प्रकार भी बखान किया–

'नाम जपत सब हीं मिटे, मोह ममता के दाग,
ज्यों ईंधन के ढ़ेर को, भस्म करे छिन आग।
नाम रतन जिन पाया, सो जन भाए निहाल,
बंधन टूटा कर्म का, सुखी भए तिहुँकाल।
पूँजी पाई साँच की, दूजी रही न आस,
सत्यलोक वासा किया, कटी काल की फाँस।'

जीव का सच्चाधन हरि नाम है, इसके बिना यह शोभा नहीं पाता। संसारी वस्तुएं चाहे मनुष्य के पास कितनी हीं हो जाए परन्तु श्नामश के बिना इनका कुछ भी मूल्य नहीं है। सांसारिक दृष्टि से चाहे वह हर प्रकार से उन्नतिशील नजर आए, यदि श्प्रभु नामश रूपी धन के साथ उसकी लगन नहीं है तो वह परमार्थिक दृष्टि से कंगाल ही समझा जाएगा। उसकी अपेक्षा एक ऐसा मनुष्य जो नीच जाति का है, निर्बल है, धनहीन, रूपहीन है किन्तु ष्भगवत नामष्के साथ उसका प्रीत है, वह परमात्मा के दरबार में आदर और प्रसंशा का अधिकारी है।

महात्मा कबीर ने कहा कि–

'कबीरा सब जग निर्धना, धनवन्ता नहीं कोय।
धनवन्ता सोइ जानिये, जाके श्सतनामश धन होय।'

अर्थात सारा संसार गरीब और कंगाल है, इसमे एक भी धनवान नहीं है। असली धनवान मनुष्य वह है जिसके पल्ले श्सतनामश का धन है।

'जा की गांठी नाम है, ताके हैं सब सिद्धि,
कर जोड़े ठाढ़ी सभी, अष्ट सिद्धि नव निद्धी।'

जिसकी गाँठ में 'नाम' का धन है, उसे फिर किस बात की कमी है। वह शाहों का भी शाह-शहंशाह है। सब सिद्धियाँ ऋद्धियाँ हाथ जोड़े उसकी सेवा में उपस्थित हैं।

संत कहते हैं कि 'नाम' और श्नामीश में कोई भेद नहीं है। यदि सचमुच उस परमात्मा के दर्शन की इच्छा तेरे अंदर है तो नाम से प्रीति कर क्योंकि वह नाम से भिन्न नहीं है। जब तुम्हें नाम की प्राप्ति हो जाएगी तो वह भी तुझसे दूर नहीं रहेगा।

एक फकीर ने कहा है कि-

'बसाले हक तलवी, हमनशीं नामश बाश,
बवद वसाले खुदा, दर वसाले नामे खुदा।
यकीनी विन्दाकि बाहक नशिस्त शबो रोज,
चूँ हम नशीं तो बाशद ख्याले नामे खुदा।'

अर्थात् यदि तुम्हें खुदा (प्रभु) से मिलने की इच्छा है तो उसके 'नाम' से मिलाप कर क्योंकि 'खुदा' के नाम का मिलाप खुदा हीं का मिलाप है और यह निश्चय जान कि यदि तेरे मन में हर समय खुदा के 'नाम' का ख्याल है तो समझ ले कि वह खुदा दिन रात तेरे पास बैठा हुआ है।

गुरुवाणी में नानकदेव जी ने फरमाया है कि-

'जबलगु जोबनि सासु है तबलगु 'नाम' धिआइ।
चल दिया नालि हरि चलसि हरि अंते ले छड़ाइ।'

अर्थात् जब तक इस शरीर के अन्दर स्वास आ जा रहा है, हमें चाहिए कि 'नाम' का सुमिरण करते रहें, क्योंकि 'नाम' हमारे परलोक का साथी है। यदि अन्त समय में 'नाम' का खड़ग हमारे हाथ में होगा तो हम निःसंदेह मोह माया के बंधनों को काटकर मुक्त हो सकते हैं।

'नाम जो रत्ति एक है, पाप जो रत्ति हजार।
आध रती घट संचरे, जार करे तिन छार।
श्नाम श्जपत सब मिट गए, मन मनसा के दाग।
मानो चिनगी आग की, पड़ी पूरानी घास।'

अर्थात् यदि तुम पापवंत हो और जन्म जन्मान्तरों से पाप हीं करते चले आ रहे हो तो चिंता फिर भी न करो, क्योंकि 'नाम' में इतनी शक्ति है कि यदि एक रत्ती भी तुम्हारे घट में समा जाएगा तो करोड़ों जन्मों के पाप

पल भर में ठीक वैसे हीं दूर हो जाएगा जैसे पुराने घास के ढ़ेर को तनिक सी अग्नि जला कर भस्म कर देती है। जैसे सूर्य के उदय होते ही अंधकार का नाश हो जाता है, जैसे शीतकाल आते हीं ग्रीष्म ऋतु का प्रभाव जाता रहता है, जैसे पानी के पीने से प्यास बुझ जाती है, जैसे औषधि के सेवन से रोग नहीं रहता, जैसे भोजन पा लेने से भूख मिट जाती है, ऐसे हीं 'नाम' का सुमिरण करने से सब पाप दूर हो जाते हैं और मनुष्य शान्ति को प्राप्त होता है।

संत पलटू साहब जी 'नाम' की महिमा का इस प्रकार बखान करते हैं–

'दीपक बारा 'नाम' का महल भया उजियार।
महल भया उजियार नाम का तेज बिराजा।
'शब्द' किया परकाश मानसर उपर छाजा,
दसों दिसा भई सुद्ध वुद्ध भई निर्मल साची।
छूटी कुमती की गाँठि सुमति परगट होय नाची।
होत छतीसों राग दाग तिर्गुन का छूटा,
पूरन प्रगटे भाग करम का कलसा फूटा।
पलटू अंध्यारी मिटी बाती दिन्हीं टार,
दीपक बारा 'नाम' का महल भया उजियार।'

परमात्मा के अनंत नाम हैं, जो अपने अपने वक्त के संतों और महात्माओं ने उच्चारण किया। किसी ने उसे राम राम कहा तो किसी ने उसे ओम् नाम कहा। कई सन्तों ने सतनाम, ईश्वर या परमेश्वर कहकर याद किया। तात्पर्य यह है कि ऐसे अनन्त नाम हैं, जो उसके भक्तों ने रचे हैं। मैं उन सभी नामों पर बलिहारी हूं, क्योंकि ये सब उस परमात्मा के नाम हैं। परन्तु 'नाम' के सूमिरण मैं लगने से पहले जिज्ञासु को इस बात को सोचने की आवश्यकता है कि वास्तव में वह 'नाम' कौन सा है जिसके जपने से जीव के मायावी बन्धन टूटते हैं और सच्चा मोक्ष मिलता है।

गुरुनानक जी कहते हैं–

'कउनु करम बिदिआ कहु कैसी धरमु, कउनु फुनि करी।
कउनु नामु गुरू जाकै, सिमरै भवसागर कुत्री।'

अर्थात् कौन सा कर्म और कौन सा धर्म किया जाय, कौन से 'नाम' का सूमिरण किया जाए जिससे भव सागर तर जाएं। संतों ने कहा कि

परमात्मा के 'नाम' का तात्पर्य उनके आदि 'नाम' से है। इस जबान (मुहँ) के द्वारा जितने नाम लिए जाते हैं, जपे जाते हैं वे सब प्रभु के गुणवाचक नाम हैं। चुँकि गुण अनन्त हैं इसलिए गुणवाचक नाम भी परमात्मा के अनन्त हैं। परन्तु जो निज 'नाम' है वह एक हीं है जो आदि में था, ब्रह्माण्ड की रचना के पहले उसके साथ था, आज भी उसके साथ ही है और आगे भी उसके साथ रहेगा। वही 'नाम' परमात्मा का वास्तविक 'नाम' है जिसके सूमिरण से, जिसके जपने से मनुष्य मुक्ति का अधिकारी बनता है।

प्रभु का नाम राम अगर माना जाए तो राम के अवतार के बाद उनका नाम राम रक्खा गया। प्रश्न यह उठता है कि राम के अवतार के पहले प्रभु का वास्तविक नाम क्या था जिसके सूमिरण से लोग मनुष्य जीवन में मुक्ति पाते थे? राम उनका गुण वाचक नाम है जो यह प्रगट करता है कि वे रोम रोम में बसने बाले हैं। संतों ने कहा कि-

'एक राम दशरथ का बेटा, एक राम घट घट में बैठा।
एक राम का जगत पसारा, एक राम जगत से न्यारा।'

इसमें जिस राम को हम राम के नाम से जानते हैं वह तो दशरथ के बेटे थे। क्या दशरथ के बेटे राम हीं परमात्मा का नाम है-नही.,दशरथ के बेटे जव पुत्र रूप में आकर संसार में जो भी उन्हें लीला करना था, करने के पश्चात मनुष्य हीं के तरह चले गए। अगर राम से मेरा तात्पर्य है-घट घट में बैठने बाला राम-तो वह तो राम के आने के पहले से हीं सभी के घट में सदियों से बैठा चला आ रहा है। उसका नाम उस समय (शुरूआत में क्या था?

अगर राम से तात्पर्य है-वह राम जिसका जगत पसारा हुआ है, अर्थात् जिसने जगत की रचना की तो जिसने भी रचना की, उसका नाम तो रचना के पहले से हीं उसके साथ स्थित है। वह नाम क्या धा?

अगर राम से तात्पर्य है उस राम का जो इस सम्पूर्ण जगत से न्यारा है तो सम्पूर्ण जगत से न्यारा वही हो सकता है जिसकी पहचान जगत से हट कर हो अर्थात जो जगत के घेरे में नहीं हो। वही तो इससे न्यारा हो सकता है जो इसके घेरे के बाहर हो।

अतः प्रभु के सभी गुणवाचक नामों से हटकर उनको तत्व से पहचानने की जरूरत है। उस 'तत्व' का क्या नाम है?

अगर परमात्मा का नाम कृष्ण माना जाए तो कृष्ण भी जब पृथ्वी पर अवतरित हुए और नामकरण संस्कार किया जाने लगा तो चुकिं उनमें एक आकर्षन शक्ति थी जो सबों को अपनी ओर आकर्षित कर सकता था, अतः उनका नामकरण उनके इस आकर्षन के गुण के कारण किया गया। इनको कई और भी गुणवाचक नाम दिया गया, जैसे-मुरली बजाने के गुण को लेकर-मुरलीधर, माखन चुराने के गुण को लेकर-माखनचोर, गिरी (पर्वत) उठाने के गुण को लेकर-गिरधारी, गायों के पालन करने के गुण को लेकर-गोपाल इत्यादि इत्यादि। परन्तु इन सब गुणवाचक नाम को छोड़कर, इससे हटकर उनके 'तत्व' का एक 'नाम' था जो 'आदि नाम' के रूप में उनके तत्व से जुड़ा धा। यही 'आदि नाम' राम के तत्व से भी जुड़ा था।

सांसारिक दृष्टिकोण से अगर देखा जाए तो यही सभी मनुष्यों के साथ भी होता रहा है। मान लिया जाए किसी व्यक्ति का नाम माधव है। वह किसी का बेटा है- तो उसका एक गुण बाचक नाम- 'बेटा' हुआ जिससे उसकै माता-पिता सम्बोधित करते हैं, वह किसी का बड़ा भाई है तो अपने छोटे भाई के लिए अपने गुणबाचक नाम 'भैय्या' द्वारा भी सम्बोधित होता है, उसकी पत्नी है जिसके समक्ष वह अपने पति के गुणबाचक नाम 'पतिदेव' द्वारा सम्बोधन पाता है, वह एक शिक्षक की नौकरी करता है तो स्कूल में अपने अध्यापकीय गुण के कारण गुणबाचक नाम 'मास्टर साहब' द्वारा जाना जाता है और वह कभी कभी गांव में दवा देने अर्थात् डाक्टर का कार्य करता है तो उसके गुण के कारण कई लोग उसे 'डाक्टर साहब' कहकर पुकारते हैं। तो इस संसार में उसके कई गुणबाचक नाम हुए पर मात्र गुणों के आधार पर। परन्तु यहां भी वही प्रश्न उठता है कि माधव का असली नाम क्या है? माधव या बेटा या भैय्या या पतिदेव या मास्टर साहब या डाक्टर साहब इत्यादि इत्यादि?

उसका भी असली नाम वही है जो उसके अन्दर बैठने बाले का, जिसके वैठे रहने के कारण वह जीवित है और उसके सारे गुणबाचक नाम भी लिए जा रहे हैं, उस गुणबाचक नाम के द्वारा उसे पुकार रहे हैं। यह सारा खेल उस दिन समाप्त हो जाएगा जिस दिन उसके अन्दर का पंक्षी

शरीर रूपी पिंजड़े से उड़कर फुर्र हो जाएगा। वही पंक्षी असली है, वही अविनाशी है, वही अजर और अमर है, वही 'अक्षर' है, वही 'शब्द' है, वही 'नाम' है, वही 'नामी' है। वही श्रृष्टि का रचईता है, वही श्रृष्टि का पालन हार है और वही श्रृष्टि का विध्वंस करने बाला है। ये सारे गुण बाचक नाम माया के घेरे में हैं। हिंदी, अंग्रेजी या किसी भी भाषा के वर्णमाला में परमात्मा का केवल गुणबाचक नाम हीं लिखा जा सकता है या वर्णन किया जा सकता है। वर्णमाला की रचना मनुष्यों ने की है-आपस में एक दूसरे की बात समझने बुझने के लिए, जिन्दगी को सरल बनाने के लिए। अतः परमात्मा के गुणों का वर्णन तो इस वर्णमाला के अक्षरों द्वारा किया जा सकता है, परन्तु उस परमात्मा का 'असली नाम' इस वर्णमाला के अक्षरों द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता। वर्णमाला माया के अधीन है और जिसने भी परमात्मा के 'नाम' का अनुभव किया उन्होंने सिर्फ महिमा का उल्लेख इन वर्णमाला के अक्षरों द्वारा किया क्योंकि परमात्मा का नाम सिर्फ अनुभव का विषय है, बखानने का नहीं। तभी तो तुलसीदास जी ने लिखा जैसा उपर वर्णन किया गया है-

'नाम रूप गति अकथ कहानी, समुझत सुखद न परति बखानी।'

अर्थात् परमात्मा के 'नाम और रूप' का वर्णन अकथनीय है, समझने में सुख देने बाला है पर इसका बखान नहीं किया जा सकता। एक संत ने लिखा-

'बावन अक्षर माया माही,
ता में राम नाम नाहिं, नाहिं, नाहिं ।'

अर्थात् वर्णमाला के बावन अक्षर जो सभी माया के अधीन हैं उनमें राम का नाम नहीं है, नहीं है, नहीं है।

गुरूवाणी में कहा गया है कि संतों ने जिस नाम को जानकर उनकी महिमा गाई है, वह हस्तलिखित या जीभ्भा का विषय नहीं है, वह निज नाम है, जिसे 'सत्य नाम' कहकर जाना गया है।

'किरतम नाम कथे तेरे जिह्वा,
सतिनामु तेरा परा पुरबला।'

संतों ने यह भी लिखा है कि-

'बावन अक्षर लोक त्रै, सभु कहु इन ही माहि।
एक अक्षर खिरि जाहिगे, औइ अखर इन महि नाही।'

अर्थात् इस संसार के लिए सारी चीजें इन वर्णमाला के बावन अक्षरों में ही है, परन्तु इस वर्णमाला के अक्षरों से अलग एक और 'अक्षर' है जिससे परमात्मा जाने जाते हैं।

तुलसीदास जी ने रामायण में परमात्मा के असली नाम, राम के पावन नाम की ओर सिर्फ इशारा किया है कि, जिससे मनुष्य उनका इशारा समझ पाय, परन्तु इशारा समझना तब तक संभव नहीं है, जब तक कोई भेदी न मिल जाय, जो उस भेद को हमारे समक्ष प्रकट कर दे।

'एक छत्रु एक मुकुट मणि, सब वर्णण में जोऊ,
तुलसी रघुवर नाम के वर्ण विराजत दोऊ।'

परमात्मा का नाम अगर वास्तव में वर्णमाला के किसी अक्षर में होता तो फिर अनन्त पोथियां, पुस्तकें अक्षरों से भरी पड़ी है, वहीं से नाम प्राप्त कर लिया जाता। यदि नाम लिखने-पढ़ने की बात होती तो संसार में बड़े बड़े विद्वान और पंडित हो गुजरे, उनको श्नामश मिल गया होता। रावण चारों वेदों का वक्ता था, परन्तु 'नाम' के रहस्य को, श्नामश के महिमा को उसने भी न जाना। गोस्वामी तुलसीदास जी सकल शास्त्रों के ज्ञाता और उच्च कोटि के विद्वान थे, परन्तु 'नाम' के बिना कामदेव के हाथों ऐसे मुर्छित हुए थे कि जिसका वर्णन नहीं। विद्या ने कुछ भी सहायता वहाँ नहीं की, परन्तु जब सद्गुरु से मिलाप हुआ तो असली नाम की जानकारी हुई। यदि 'नाम' वर्णमाला का अक्षर होता तो संत महात्माओं को सद्गुरु के शरण में जाने की आवश्यकता न होती।

राम और कृष्ण को भी 'नाम' का ज्ञान पाने के लिए सद्गुरु के पास जाना पड़ा था।

'राम कृष्ण से को बड़ो, तिनहूं तो गुरु कीन।
तीन लोक के जो धनी, सो गुरु आगे आधीन।'

तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा है-

'गुरु बिन होय कि ज्ञान, ज्ञान कि होय विराग बिन।
गावे वेद पुराण, सुख कि लहें हरि भक्ति बिन।'

संतों ने 'नाम' के ज्ञान के बिना मनुष्य का जीवन बेकार बताया है। उन्होंने तो 'नाम' के बिना मनुष्य के गति के बारे में लिखने की कोई सीमा नहीं छोड़ रखीं। यहाँ तक लिख दिया कि–

'नाम लिया तिन सब लिया, सकल वेद का भेद।
बिना नाम नरकै पड़ा, पढ़ता चारों वेद।'

अर्थात् जिस मनुष्य को 'नाम' ज्ञान के रूप में मिल गया और अगर उसने 'नाम' का सुमिरण किया तो उसने सारे वेदों का भेद पा लिया, परन्तु अगर वह चारों वेदों का केवल अपने जीवन में पठन पाठन हीं करता रह गया तथा 'नाम' को हासिल नहीं किया तो वह 'नाम' के जाने बिना नरक में जाएगा।

गुरूवाणी में कहा गया–

'बिनु 'सद्गुरु' 'हरिनाम' न लभई।
लख कोटी करन कमाऊ।'

अर्थात् कितने लाख भी करम कमाई कर ली जाए, बिना सदगुरू के 'हरिनाम' का लाभ नहीं मिल पाता।

'सदगुरू ऐसा किजिए, पड़े निशाने चोट।
सुमिरण ऐसा किजिए, जिह्वा हिले न होंठ।'

परमात्मा के असली 'नाम' और उनके गुणबाचक नाम में बड़ा अन्तर है। आमतौर पर संसार में जहाँ कहीं भी नाम का सिलसिला दृष्टि में आता है वहां यही कुछ है कि जिह्वा हिली तो नाम भी हिला, जिह्वा चली तो नाम भी चला। विचारने योग्य बात है कि किसी समय में जब जिह्वा और हाथों के हिलने डूलने की शक्ति नहीं रही तो नाम का सिलसिला भी समाप्त हो जायगा। अतः यह नाम, अन्त समय जब जिह्वा आदि सभी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती है, कहाँ तक सहायता कर सकता है। कबीरदास जी ने समझाया है–

'सहजे हीं धुन होत है, हरदम घट के माहिं,
सुरत शब्द मेला भया, मुख की हाजत नाहिं।
सुमिरण सुरत लगाय के, मुख से कछु न बोल,
बाहर के पट देय के, अन्दर के पट खोल।'

उन्होंने आगे समझाया-

'माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख माहिं,
मनुवां तो दसो दिसि फिरे, यह तो सुमिरण नाहिं।
माला फेरत युग गया, गया न मन का फेर।
कर का मणका डार दे, मन का मणका फेर।'

अर्थात् हाथ के द्वारा माला फेरा जा रहा है तथा जीभ मुख के अन्दर हरकत कर कुछ उच्चारण कर रहा है, उसी समय मन दसों दिशाओं का भ्रमण कर रहा होता है, तो यह कोई सुमिरण नहीं हुआ। अतः मनुष्यों को बतलाया कि माला फेरते फेरते युग भी अगर बीत जाए, तो भी मन की गति, उसकी स्थिति में परिवर्तन नहीं होता है, फिर भी मनुष्य पर माया की गति ही रहती है क्योंकि माया से उपर उठने के ये उपाय, साधन नहीं है, अतः माया से उपर उठना है और हरि भक्ति में लगना है तो हाथ द्वारा फेरने बाले को फेक दो और मन का माला अपने अन्दर फेरना शुरू करो। मन के माले को फेरना सीखना है-मनुष्य को, अपने जीवन को सफल करने हेतु।

सोचने की बात है कि जिस विद्या के बल से संतों ने वेद, पुराण इत्यादि की रचना की वह कौन सी विद्या थी? इस विद्या की पढ़ाई कहाँ होती है, किस विद्यालय में, किस महाविद्यालय में और किस विश्वविद्यालय में? किस मूल विद्या के जानकारी के बाद संत महात्मा जो कहते हैं वह प्रवचन हो जाता है और उसी को शास्त्र और ग्रन्थ के रुप में माना जाता है, वही शास्त्र और ग्रन्थ बन जाते हैं। कबीरदास जी कहते हैं-

'बिन देखे बिन दरस परस के, 'नाम' लिये क्या होय,
धन के कहत धनी जो होय, तो निर्धन रहे न कोई।'

अर्थात् यदि केवल रुपया रुपया कहने से मनुष्य धनी हो जाता, तो संसार में एक भी निर्धन न रहता। ऐसे हीं मुख से केवल प्रभु का नाम लेने से कुछ नहीं हासिल होता, हासिल होता है उस परमात्मा के असली नाम के दर्शन से, जिस नाम के लेने से 'नाम, और नामी' दोनों का दरसन परसन संभव होता है।

संतों ने ऐसी भाषा में मनुष्यों के आगे उसी की भलाई के खातिर साफ साफ शब्दों में समझाने का प्रयत्न किया है कि वह समझकर इन बातों पर अमल कर आगे बढ़े। एक प्रकार से मनुष्यों को डाँट फटकार भी लगाया गया है- संतों द्वारा, कि वह संभले, परन्तु इन शब्दों को पढ़कर भी अगर कोई न समझे, न संभले तो कोई क्या कर सकता है?
कुछ उदाहरण देखें-

'घट में है सुझे नहीं, लानत एसी जिंद,
तुलसी या संसार को, भयो मोतियाबिंद।'

अर्थात् वह मालिक, वह प्रभु हमारे हीं घट (मन मन्दिर) में वैठा है, फिर भी हम वहां झाकनें का प्रयास नहीं कर रहे हैं तो ऐसी जिन्दगी जीने में लानत है, तुलसीदास जी कहते हैं कि जिस प्रकार मोतियाबिंद की बीमारी होने से आँखों द्वारा कुछ नजर नहीं आता, उसी प्रकार संसार के लोगों ने अपने अंदर की आँख में भी मोतियाबिंद पाल रखा है। क्योंकि घट के अंदर के दृष्य के लिए घट के अंदर के नेत्र को खोलना होगा।

'खाना पीना जीने नूं, नहीं जीना खाने पीने नूं,
है लानत उस कमीने नूं, जो खांदा पींदा मर जांदा।'

गुरुग्रंथ में गुरुवाणी के रूप में समझाया गया है कि मनुष्य को खाना पीना इसलिए चाहिए कि वह जिंदा रहकर इस जीवन में परमात्मा को पहचानने, उसको जानकर, उसकी संगति करने का लाभ ले सके, यह नहीं कि मनुष्य जिंदा इसलिए रहे कि खाना-पीना हीं उसके जीवन में सबकुछ है। जो व्यक्ति इस जीवन को खाने-पीने में हीं सिर्फ लगाकर अगर पूरा समय बर्बाद कर दे तो वैसे जीवन जीने बाले कमीने को लानत है जिंदा रहना।
एक संत ने यूं लिखा-

'खांड ही को नाम लेत मुख नहीं मीठा होत,
होत पुनि मीठा मुख खांड हीं के खान से।
नीम के नाम लेत मुख नहीं कड़वा होत,
होत कड़वा मुख पुनि नीम के चबान से।
पानी हीं का नाम लेत प्यास नाहीं बुझे कभी,
प्यास सोई बुझे पुनि पानी हीं के पान से।

राम राम कहन से ही शान्ति न होत कभी,
शान्ति तो होय पुनि राम के पहिचान से।'

अर्थात् केवल गुड़ के नाम लेने से मुख मीठा नहीं हो जाता, मुख को मीठा करने के लिए गुड़ को खाना पड़ता है। नीम का नाम लेने मात्र से मुख कड़वा नहीं होता, नीम को साक्षात चबाने से ही मुख कड़वा होता है। पानी पानी कहने से प्यास नहीं बुझती, जब तक कि पानी पीया न जाए। इसी प्रकार केवल राम राम मुख से कहने से उसके हृदय में शान्ति का अनुभव नहीं होता, शान्ति अगर हृदय में होनी है तो घट के अन्दर वैठे राम से पहिचान करनी होगी। घर में अंधेरा है, दीपक का नाम हजार बार लेते रहेगें, रोशनी नहीं होगी। जितना अन्तर दीपक के नाम और जलते हुए दीपक में है, उतना हीं अन्तर परमात्मा के असली नाम और गुणवाचक नाम में है। अगर दीपक उनका गुणवाचक नाम है तो जलता हुआ दीपक उनका असली नाम, उनका पवित्र नाम। जिस भी ग्रन्थ, पोथियों को हम देखते हैं, वे सब उस पवित्र नाम के प्रतिबिम्ब हैं जो उस पवित्र आदर्श की तरफ अंगुली से इशारा कर रहे हैं कि उसे खोजो और उसे पाने का प्रयास करो।

सुखमनी साहिब के अन्दर साहिब पंचम पादशाह महाराज फरमाते हैं-

'सगल सृसटि को राजा दुखीआ,
हरि का नु जपत सोइ सुखीआ।
लाख करोर बंधुन परै,
हरि का नामु जपत निसतरै।'

भाव यह है कि 'नाम' के बिना सम्पूर्ण सृष्टि का राज्य मिल जाने पर भी जीव सुखी नहीं हो सकता। अर्थात् सुख 'नाम' के अन्दर है, वह तीन लोक के राज्य में भी नहीं है।

अब विचारना यह चाहिए कि लोग नाम भी जपते हैं, परन्तु सुखी फिर भी नजर नहीं आते, दुःख से छुटकारा फिर भी उनको नहीं है, आखिर इसका कारण क्या है? क्या घर में पारसमणि को रखने बाला कभी कंगाल रह सकता है? क्या सूर्य के सन्मुख कभी अन्धकार ठहर सकता है? क्या संतों की संगति में कभी हानि हो सकती है? क्या खोटी संगति में कभी मन शुद्ध रह सकता है? क्या भक्ति के सामने कभी मोह ठहर सकता है? क्या ज्ञान के सामने कभी द्वैत भाव आ सकता है? क्या दुष्ट की संगति में कभी

कुशल हो सकता है? क्या परमार्थ के सामने कभी भवसागर का भय व्याप सकता है? क्या ईष्यावान मनुष्य के अन्दर कभी शान्ति आ सकती है? क्या बुराई करने बाला मनुष्य संसार में कभी यश पा सकता है? क्या भले व शुद्ध मन वाले प्राणी कभी नष्ट हो सकते हैं? क्या धर्म के सामने कभी अधर्म ठहर सकता है? क्या सद्गुरु के संग में कभी संशय भ्रम रह सकते हैं? कदापि नहीं। यदि ये सब बातें सत्य है तो यह भी सत्य होनी चाहिए। जब नाम सम्पूर्ण सुखों का भंडार है तो फिर उसको जपते हुए मनुष्य दुःखी क्यों है? क्या ये वचन मिथ्या कहे गए हैं?

'नानक दुखीया सब संसारा,
सुखिया सोई जो 'नाम' अधारा।'

वास्तविकता यह है कि लोग 'नाम' के सत्यता तक नहीं पहुंच पाए हैं। उनको अभी वह 'पावन नाम' नहीं मिल पाया है। वे अभी 'नाम' के असलियत से बेखबर हैं और अन्यत्र चक्कर काट रहे हैं। महापुरुषों का बचन है (गुरुवाणी में)-

'अदृष्ट, अगोचरू नामु अपारा,
अति रसु मीठा नामु पियारा।'

'नाम' वास्तव में इन्द्रियों का विषय नहीं है, वह अदृष्ट है, अगोचर है, अर्थात् आँख, कान और जीह्वा आदि से परे की वस्तु है। गोस्वामी तुलसीदास जी का कथन है-

'बिनु पद चलै सुनै बिन काना,
कर बिनु करम करे बिधि नाना।
आनन रहित सकल रस भोगी,
बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा,
गहे घ्राण बिनु वास अशेखा।
अस सब भाँति अलौकिक करनी,
महिमा जासु जाइ नहीं वरनी।'

ये सब बातें भेद की है, गुप्तता की है, जिसे स्पष्ट रूप में लिखने का प्रयास किया जा रहा है, परन्तु 'ज्ञान' के बिना समझना कठिन है। असलियत

सब में एक है और यही कारण है कि जो असलियत का ज्ञान रखते हैं, उन सब की वाणी एक हीं है। एक सुफी साहब कहते हैं-

'चश्म बन्दो, गोश बन्दो, लब्बे बन्द,
गर न बीनी नूर हक, बर मन बिखंद।'

मौलाना रूम साहिब कहते हैं कि आँख बन्द कर, कान बन्द कर, जबान बंद कर के अपने अन्दर में देख, मन को सत्य में लगा, यदि फिर भी तुझे ईश्वर की ज्योति नजर न आए तो फिर मुझ पर हँस।

कबीर साहब कहते हैं-

'आँख कान मुख ठाँप के, 'नाम' निरंजन ले,
अन्तर के पट तब खूले, जब बाहर के पट दे।'

अर्थात् आँख, कान, मुख को बंद कर अपने अन्दर स्थित परमात्मा के 'नाम' के साथ लग जो सभी के आँखों का अंजन है, प्रिय है। बाहर के सभी इन्द्रियों को बंद करके अंदर के दरबाजे को जब खोलोगे तो उसके दर्शन होगें।

भक्त सहजो बाई ने लिखा-

'तीनों बंद लगाय के, अनहद सुन टंकोर,
सहजो सुन्न समाधि में, नहिं साँझ नहीं भोर।'

कबीरदास जी का वचन है-

'आदि 'नाम' निज मूल है, और मंत्र सब डार,
कहे कबीर निज 'नाम' बिन, डुब मुआ संसार।
कोटि नाम संसार में, ताँ थे मुक्ति न होय,
आदि 'नाम' जो गुप्त जप, बूझे विरला कोय।'

अर्थात् परमात्मा का जो 'आदिनाम' है, जिससे सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है-वही 'नाम' जानना है, और अन्य सभी मंत्रों को छोड़ दो। बिना उस 'नाम' को जाने इस संसार में आकर भी अपने को डूबा हुआ जानो, क्योंकि मनुष्य इस जीवन को पाकर अगर लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाया और मोह माया रुपी संसार में डूबा रहा तो यह जीवन किस काम का हुआ उसके लिए? कबीरदास जी ने यहां तक मनुष्यों को समझाया कि इस संसार में परमात्मा के करोड़ों नाम है जो इस जिह्वा और इस मुख से लिया जा सकता है, परन्तु उन सभी नामों से मुक्ति नहीं मिल सकता। इन सभी नामों से अलग

जो परमात्मा का 'आदिनाम' है, जो मनुष्य के घट के अन्दर गुप्त रुप से बैठा है, उसका सुमिरण करने से मनुष्य को मुक्ति मिल सकता है। इसे कोई कोई हीं (बिरला हीं) समझ सकता है। संतों ने कहा–

'गुपता नामु वरतै विचि कलजुगि,
घटि घटि हरि भरपुरि रहिया।
नामु रत्न तिना हिरदै प्रगटिया,
जो गुरु सरणई भजि पिया।।'

वह 'गुप्त नाम' बाहर नहीं है, वह हमारे अन्दर है और हमें केवल गुरु के शरण जाकर, उनसे भेद पाकर उस 'नाम' की कमाई करने की जरुरत है यदि 'नाम' कोई बाहर की वस्तु रहती तो महापुरुषों को यह वचन उच्चारण नहीं करना पड़ता।

तुलसीदास जी ने भी लिखा–कलियुग में केवल परमात्मा के 'नाम' का हीं आधार है जिसे सुमिरणा है।

'कलियुग सिर्फ एक 'नाम' अधारा, सुमिर नर उतरहीं पारा।।'

फिर उन्होंने बतलाया कि

'बारी में घृत होइ वरू सिकता थे वरु तेल,
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल।'

अर्थात् पानी को मथने से घी प्रगट हो सकता है, और बालू को पेरने से तेल भी बन सकता है, परन्तु बिना 'हरिभजन' के कोई मनुष्य इस भवसागर से नहीं तर सकता, यह एक अटल सिद्धांत है। यह 'हरिभजन' क्या है? 'नाम' की ध्वनि हमारे अन्दर हर समय हो रही है जो शिखर के स्थान से उतर कर नीचे के मडलों में सुनाई देती है है। हमारी आत्मा, हमारी सुरती का असली सम्बन्ध उसी के साथ है। जब समर्थ गुरु से इसका भेद मिल जाता है, तब सुरति उससे मिलाप करती है। जैसे मकड़ी तार का आश्रय लेकर ऊपर चढ़ जाती है, ऐसे हीं सुरति 'नाम' की डोरी पकड़कर नाम के भंडार में पहुंच जाती है। यह अन्तरमुखी मार्ग है। इससे मन की वृत्तियां सिमटती है। संसार में रहने वालों के मार्ग वहिर्मुखि हैं और उनसे मन की वृत्तियां बिखरती है। इस अन्तर्मुख मार्ग पर थोड़ी या बहुत जितनी भी कमाई की जाए उससे आत्मा को शांति मिलती है, उसे उसका खुराक

मिलता है। अन्तर्मुख मार्ग में मन की वृत्तियों को एकाग्र कर उलटाना पड़ता है, इसलिए इसको उल्टा मार्ग भी कई संतों ने कहा है।

'उल्टा जाप जपा जग जाना, बाल्मिकी भये ब्रह्म समाना।'

इसी उल्टा जाप से बाल्मिकी ब्रह्म के समान हो गेए गए। इस नाम का जाप एक अजपा साधन है। इस नाम को जपने के लिए, सुमिरणा के लिए जिह्वा, तालु या होंठ किसी भी अंग को हिलाने की जरुरत नहीं होती। यह आप से आप हो रहा है, इसकी कमाई से आत्मा को एक शक्ति मिलती है और वह धीरे धीरे निशाने को दृष्टिगोचर कर तरक्की की तरफ कदम उठाता जाता है। इस रहस्य को कबीर जी ने यूं समझाने का प्रयास किया–

'कबीर माला काठ की, बहुत जतन का फेर।
माला स्वासो स्वाँस की, जां मे गांठ न मेर ।।
बाहर क्या दिखलाइये, अन्दर जपिये नाम।
कहा महोला खलक से, पड़ा धनी से काम।।
अजपा सुमिरणा घट विखे, दिना सिरजनहार।
ताही सूँ मन रम रहिया, कहे कबीर विचार।।'

अर्थात् काठ की माला बनाने में इतना परिश्रम क्यूं करना है? फिर इस माला को जपने से कोई लाभ नहीं, माला तो स्वासों में एक एक स्वांस की फेरनी चाहिए जिसमें न तो कोई गांठ हीं है और न कोई परिश्रम। आपके अपने अन्दर में वह धनी बैठा है जिससे हमें काम है, उसका 'नाम' वहाँ अन्दर में जपिये, बाहर किसी को दिखावा करने की जरूरत नहीं है। उस सिरजनहार ने अपने घट के अन्दर ही उस अजपा 'नाम' का भेद खोल दिया है जिसका सुमिरणा करना चाहिए, उसी 'नाम' में मन को रमाना है ताकि घट में बैठे राम से साक्षात्कार हो सके।

संत मलूक दास जी ने कहा–

'सुमिरण ऐसा किजिए, दूजा लखे न कोय।
होंठ न फरकत देखिये, प्रेम राखिये गोय।।'

अर्थात् अपने हृदय में प्रेम के साथ उस परमात्मा के नाम का सुमिरण किजिए जिसमें न तो होंठ हीं हिलता है और न कोई अंग, ताकि कोई भी दूसरा आपको देखकर यह न समझ सके बाहर से, कि आप इस समय सुमिरण कर रहे हैं। सहजो बाई का कथन है–

‘राम नाम’ यूं लिजिए, जाने सिरजन हार।
सहजो कै करतार ही, जाने न संसार।।
बैठे लेटे चालते, खान पान व्यवहार।
जहाँ तहाँ सुमिरण करे, सहजो हिय निहार।।
जागत में सुमिरण करे, सोवत में लिव जाय।
सहजो इक रस ही रहे, तार टूट नहिं जाय।।
ऐसा सुमिरण किजिए, सहज रहे लिव लाय।
बिन जिभा विन तालुये, अन्तर सुरत लगाय।।
हंसा सोहं तार कर, सुरत मकरिया पोय।
उतर उतर फिर फिर चढ़ै, सहजो सुमिरण होय।।
लगे सुन्न में टिकटीकी, आसन पदम लगाय।
नाभि नासिका माहिं कर, सहजो रहे समाय।।
सहज स्वांस तीर्थ बहे, सहजो जो कोई न्हाय।
पाप पुण्य दोनों छुटें, हरि पद पहुंचे जाय।।
हक्कारे उठ नाम सूँ, सक्कारे होय लीन।
सहजो अजपा जाप यह, चरनदास कह दीन।।
सब घट अजपा जाप है, हंसा सोहं पुरख।
सुरत हिये ठहराया के, सहजो या विधि निरख।।’
अब पलटू दास जी की बात पर विचार करें-
‘संत सनेही नाम है, नाम सनेही संत।।
नाम सनेही सन्त नाम को वही मिलावें।
वे हैं वाकिफकार मिलन की राह बतावें।।
जप तप तीर्थ व्रत करे बहुतेरा कोई।
विना वसीला सन्त नाम से भेंट न होई।।
कोटिन करे उपाय भटक सगरौ से आवे।
सन्त दुआरे जाय नाम को घर तब पावे।।
पलटू यह है प्राण पर आदि सेती और अन्त।
सन्त सनेही नाम है नाम सनेही सन्त।।’

संत वे महापुरुष होते हैं जो नामी के भेद को, उसके आदि 'नाम, को जानते हैं और वही उस भेदी से मिलने की राह बतलाते हैं। सन्त की भी महिमा कठिन है क्योंकि जिस वस्तु को जप, तप, तीर्थ, व्रत इत्यादि करने से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता, अनेक अन्य उपायों से भी जिसे नहीं जाना जा सकता, उसे, जब मनुष्य, सन्त के शरण में जाता है तो सभी तरफ से भटक कर आए मनुष्य को वे अपनी शरण में लेते हैं और उसी के घट में स्थित उस भेदी का भेद बतलाते हैं। परमात्मा के 'नाम, का बोध करा देते हैं जिससे मनुष्य का जीवन सफल हो जाता है।

अतः जिस ज्ञान से मनुष्य को परमात्मा के तत्व की जानकारी होती है, उस 'आदि नाम' का रास्ता मिलता है, उस 'पावन नाम' का बोध होता है, उसे अवश्य ढूढ़ना चाहिए। संतों ने उसे ढूढ़ने का स्थान भी बता दिया कि वह ज्ञान 'सद्गुरु' के शरण में जाने के पश्चात् प्राप्त होता है। वे ही ऐसे महापुरुष होते हैं जो मनुष्य के अन्दर स्थित अमिट 'नाम' का ज्ञान करा घट के अन्दर ज्योति जला देते हैं। 'नाम का दीप' मनुष्य के घट में जब जलना शुरु करता है तो वह अपने अन्दर के विलक्षण अनुभवों की अनुभूति करता है और यह 'नामदीप' मनुष्य के अन्दर दशोदिसाओं में प्रकाश हीं प्रकाश फैला देता है।

प्रभु राम ने अयोध्या वासियों को जीवन के रहस्य की बात समझाते हुए सद्गुरु की महिमा को इस प्रकार बतलाया है–

'नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो, सन्मुख मरूत अनुग्रह मेरो।
करनधार सद्गुरु दृढ़ नावा, दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।'

अर्थात् यह मनुष्य का शरीर भवसागर से तारने के लिए बेड़ा (जहाज) है। मेरी कृपा हीं अनुकूल वायू है। सद्गुरु इस मजबूत जहाज के कर्णधार (खेनेवाले) हैं। इस प्रकार कठिनता से मिलने वाला साधन सुलभ हो जाता है। कर्णधार सद्गुरु हमें सिखाते हैं-अन्तर्मुखी होना। वे समझाते हैं कि असली उपासना स्थल हमारे अन्दर में है। उसका मूल विन्दु वास्तव में हमारे शरीर में स्थित है तभी तो हम जीवित हैं। हृदय रूपी उपासना स्थल में वह सत्ता अपने सहज व स्वभाविक रूप में निवास करता है। सद्गुरु हमारे लिए वह दरवाजा खोलते हैं जहाँ से हमारी भक्ति की शुरुआत होती है। वे हृदय को तैयार करते हैं ठीक उसी तरह जैसे एक माली, एक किसान वीज बोने के

पहले जमीन में हल चलाकर, पानी देकर, खाद इत्यादि देकर तैयार करता है इसलिए कि उसका वोया वीज अच्छा से अच्छा पौधा बने और समय पर फल दे। मनुष्य का हृदय सद्गुरु के वचनों को सुनने से, सत्संग द्वारा तैयार होना शुरू होता है- शनैः शनैः। और फिर ऐसा समय आता है कि वह मनुष्य सद्गुरु के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए हर तरह से तैयार होता है। सद्गुरु उस 'ज्ञान' को वीज की तरह मनुष्य के हृदय में बोते हैं अर्थात उसे उपहार स्वरूप इस ज्ञान का बोध कराते हैं।

भगवान श्री कृष्ण इस विषय पर अर्जुन को समझाते हैं कि-

'सर्व भूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम्।।'

अर्थात् जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य विभक्त हुए समस्त प्राणियों में एक अविभक्त (अभिन्न) अव्यय भाव को (अक्षर आत्म वस्तु को) देखता है, उस ज्ञान को तू सात्विक जान।

इस विषय में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को मार्ग समझाते हुए कहा कि-

'द्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति थे ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः।।' (अध्याय ४/३४)

अर्थात् उस ज्ञान को तू तत्वदर्शी ज्ञानी के समीप जाकर जान। उन्हें प्रणाम करने से, प्रश्न करने से तथा उनकी सेवा करने से वे तत्वदर्शी ज्ञानी तुझे उस ज्ञान का उपदेश करेगें। भगवान श्री कृष्ण ने इस ज्ञान को राज विद्या (समस्त विद्याओं का राजा) तथा राजगुह्यं (समस्त गोपनीय विषयों का राजा) की संज्ञा देते हुए कहा कि-

'राज विद्या राज गुह्यं पवित्रमिदमुत्तषम।
प्रत्यक्षावगमं धमर्यं सुसुख कर्तुमव्ययम ।।'(अ ९/२)

अर्थात् यह ज्ञान समस्त विद्याओं का राजा है, समस्त गोपनीय विषयों का भी राजा है, अति पवित्र और उत्तम है, प्रत्यक्ष अनुभव में आने बाला है, धर्ममय है, प्राप्त करने में सुगम तथा अविनाशी है।

इस ज्ञान के विलक्षणता के कारण हीं भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुए कहा कि जिस प्रकार से तू मुझे तत्व द्वारा जान पायेगा उस विषय में मैं तुम्हें सुनाता हूँ-

'ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यम वशियन्ते।।'(अ ७/२)

अर्थात् यह ज्ञान मैं तुझे विज्ञान के सहित सम्पूर्णतया बताऊंगा, जिसे जान लेने पर इस संसार में फिर दूसरा कुछ भी जानने योग्य विषय शेष नहीं रह जाता।

सत्य हीं तो है, श्री कृष्ण ने सत्य हीं तो कहा-भला राज विद्या (विद्याओं का राजा) तथा राज गुह्यं (गोपनीयों का भी गोपनीय) विषय जो यह 'ज्ञान है, जान लेने के बाद शेष जानना बचेगा ही क्या? इस 'ज्ञान' को जानने के लिए मनुष्य को सांसारिक अध्ययन की योग्यता नहीं चाहिए, सिर्फ उसे सरल होने की आवश्यकता है- एक बालक के हृदय की तरह सरल, जिसमें ग्रहण करने का विलक्षण शक्ति होता है, एक विलक्षण क्षमता रहता है जिसके कारण उसे जो भी बताया जाता है, पूरी तरह अपने अन्दर उतार लेता है, सीख लेता है।

भगवान श्री कृष्ण ने मनुष्यों के लिए सरल शब्दों में बतला दिया कि हे अर्जुन, चार प्रकार के सुकृति मनुष्य मुझको भजते हैं। पहला 'आर्त'-यानि रोग, संकट, आदि से पीड़ित। दूसरा 'जिज्ञासु'- अर्थात् मुझे जानने की इच्छा बाला। तीसरा- 'अर्थार्थी'-अर्थात धनादि की कामना करने बाला। तथा चतुर्थ 'ज्ञानी' - अर्थात मुझे परोक्ष रूप से जानने बाला। परन्तु हे अर्जुन, उन सभी में 'ज्ञानी' श्रेष्ट हैं क्योंकि वे नित्ययुक्त (सदा मुझमें चित्त लगाए रखने बाला) तथा एक भक्ति (एकमात्र मेरी ही भक्ति करने बाला) हैं और उन्हें मैं अत्यंत प्रिय हूँ तथा वह ज्ञानी भी मुझे अत्यंत प्रिय है।

'चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जून।
आर्ती जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतवर्ष भ।।
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रिय।।' (अ ७/१६,१७)

अतः मनुष्यों को इतनी रहस्यमयी जानकारी मिल जाने के बाद यही चाहिए कि अपने मनुष्य जीवन को सार्थक करने हेतु उस अव्यक्तोऽक्षर परमात्मा के 'नाम' से जूड़ने का प्रयास करे और अपने अंतःकरण में स्थित परमात्मा के धाम का सैर करे, जिसका वर्णन करते हुए श्री कृष्ण ने कहा कि-

'न तद् भास्यते सूर्यो न शशांको न पावकः।

यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।' (अ १५/६)
अर्थात जहाँ सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि की रौशनी नहीं है, स्वयं प्रकाश है (और सर्वव्यापक सबके हृदय में है) जिसको प्राप्त होने पर मनुष्य संसार में नहीं लौटता, वही मेरा परमधाम है।

यूँ कहा जाए कि परमात्मा ने अवतरित होकर इस पृथ्वी पर मनुष्यों को अपना पता बतला दिया। वे कहाँ रहते हैं- उस स्थान की जानकारी दे दी। अगर मनुष्य थोड़ा भी परिश्रम करे तो अपने प्रभु के पास पहुँचने में, उससे साक्षात्कार करने में उसे तनिक भी देर नहीं होगी। देर लगता है तो उस महापुरुष को सिर्फ ढूढ़ने में जो 'ज्ञान' की अलौकिक प्रक्रिया से उसे जोड़ दे तथा घट का दरवाजा खोलकर उसे प्रभु का दीदार करा दे, उसके पिया से उसको मिला दे। जिस प्रकार श्री कृष्ण ने अर्जुन को ज्ञान का रहस्य, नाम का रहस्य बतलाते हुए अपने परमधाम तक पहुँचने का मार्ग, रास्ता व पता बताया है, उसी प्रकार भगवान रामचन्द्र जी ने भी अपने भक्त शबरी को नवधा भक्ति का रहस्य समझाते हुए कहा है कि हे शबरी, भक्ति के बिना मनुष्य ठीक वैसा हीं लगता है जैसे जलहीन बादल। प्रभु श्री राम ने समझाया कि हे शबरी, मैं तुम्हें अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ, तू सावधान होकर सुन और मन में धारण कर।

पहली भक्ति है-संतों की संगति करना, जहाँ तुम्हें सत्संग की प्राप्ति होगी। दूसरी भक्ति है अर्थात भक्ति की दूसरी सिढ़ी है- मेरे कथा प्रसंग में प्रेम। भक्ति की तीसरी सिढ़ी है-अभिमान रहित होकर गुरू के चरण कमलों की सेवा करना और चौथी सिढ़ी है- कपट को छोड़कर मेरे गुणगान को करना, मेरी महिमा गाना। पाँचवी भक्ति है-मेरे 'मंत्र का जाप' और मुझमें दृढ़ विश्वास- जिसकी वेदों में चर्चा है, वेदों में भी प्रसिद्धि है। छठी भक्ति है इन्दियों का निग्रह, अच्छा स्वभाव व चरित्र, बहुत कार्यों से वैराग्य और निरन्तर संत महापुरुषों के धर्म आचरण में लगे रहना। सातवीं भक्ति है-जगत भर को समभाव से मुझमें ओतप्रोत देखना तथा संतों को मुझसे भी अधिक करके मानना। आठवीं सिढ़ी है-जो कुछ मिल जाय उसी में संतोष करना और स्वप्न में भी पराये दोषों को न देखना। नवीं सिढ़ी है सरलता और सबके साथ कपट रहित वर्ताव करना, हृदय में हर्ष और विषाद का न होना। इन नवों में से जिनके पास एक भी होती है, वह स्त्री-पुरुष, जड़-चेतन कोई भी

हो, हे भामिनी, मुझे वही अत्यंत प्रिय है। क्योंकि भक्ति के नवों प्रकार एक दूसरे सिढ़ी से जूड़े हैं। अगर पहली सिढ़ी को मनुष्य द्दढ़ता से पकड़ कर आगे बढ़े तो धीरे धीरे उसे भक्ति के रस का पान मिलना शुरू हो जायगा और आगे बढ़ता रहेगा।

भक्ति की सीढ़ी

९. सरलता
८. संतोष
७. समभाव
६. अच्छा चरित्र
५. 'नाम का जपना'
४. गुणों की महिमा गाना
३. गुरू के चरणों की सेवा
२. कथा प्रसंग में प्रेम
१. संतो की संगति (सत्संग)

जब उसे संतो की संगति करने से सत्संग की प्राप्ति होगी, प्रभु के गुण, उनकी महिमा सुनने का अवसर मिलेगा तो सत्संग श्रवण से प्रेम, गुरु के चरणों में प्रीत बढ़ायेगा, गुरु की सेवा करेगा। गुरू की सेवा का फल है 'ज्ञान' की प्राप्ति, अपने हृदय मंदिर में वैठे अविनाशी का ज्ञान, जिससे उस अविनाशी के नाम, रूप, गुण इत्यादि का बोध हो सके। जब भक्त गुरू की कृपा से इस ज्ञान की अनुभूति करता है तो उसके अन्दर क्षमता आती है परमात्मा के गुणगान करने का। अनमोल खजाने को अपने हृदय में पाने के बाद, अपने परमात्मा का साक्षात्कार कर लेने के बाद उसका गुणगान करना तो स्वभाविक है। इस स्थिति में- उस नाम रूपी 'महामंत्र' के साथ जब भक्त जूड़ता है, उसका सुमिरण करता है- उस अक्षर से उसका संयोग होता है-उस सत्य से जूड़ता है, तब 'नामदीप' की ज्वाला जागृत होती है। नाम का दीया अपने हृदय में भक्त जलाता है और उस प्रकाश में एक एक क्षण का आनंद लेता है। इस अवस्था में उसे और किसी चीज की परवाह नहीं रहता या यूं कहा जाए कि इस अवस्था में उसे कुछ भी सुध नहीं रहता, खो जाता है उस 'नाम' के साथ जिसके साथ जूड़ना हीं मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। इस

'नामदीप' की लौ में मनुष्य विलक्षण अनुभूति प्राप्त करता है और अपने जीवन को पाने पर परमात्मा का कृतज्ञ मानता है। वह चाहता है कि इस 'नामदीप' की रौशनी में बैठा रहे और जो भी घटित हो रहा है उसकी अनुभूति करता रहे।

'नाम' का दीप हृदय में जलाने के लिए सद्गुरु की संगति चाहिए क्योंकि सद्गुरु हीं वे कर्णधार हैं जो ज्ञान देकर मनुष्य के जीवन को सफल बनाते हैं। परन्तु सद्गुरु की पहचान क्या है? सत्संग क्या है?

'जीते जागते, ज्ञान देकर के अंदर की जो वस्तु है, अन्दर की जो चीज है, जो निरंतर चलती है, जिसके होने से मनुष्य जिंदा है, जिसके न होने से मनुष्य यहाँ नहीं रहेगा- उस चीज का जो अनुभव कराये-वह है सद्गुरु।'

'उस सद्गुरु की संगत-सत्संग है। वही असली सत्संग है। क्योंकि उस संगत के होने से सब बुरी चीजों का नाश होता है। मनुष्य के हृदय में उजाला होता है। मनुष्य उस प्रेम को, प्यार को समझने लगता है कि वह असली प्रेम क्या है।'

ज्ञान वास्तव में सद्गुरु और शिष्य के बीच जीवन भर का सौदा है। ज्ञान का भरपुर आनन्द लेने के लिए भजन अभ्यास जीवनपर्यन्त जरूरी है, और सद्गुरु और सत्संग से सम्पर्क रखना भी साधक के लिए अतिआवश्यक है।

सत्संग एक दीया है और जब वह दीया जलता है तो इस अंधेरे में प्रकाश कर देता है। मनुष्य के हृदय में प्रकाश कर देता है। और जब अन्दर प्रकाश हो जाता है, तो जब तक वह दीया जलता है और वह प्रकाश है, तब तक माया रूपी ठगनी अन्दर प्रवेश नहीं कर सकती। यह माया का देश नहीं है।

माया का अंधेरा बहुत ही घना होता है और कई बार हमलोग भूल जाते हैं कि यह कितना घना है। हम उस शक्ति को, जिसने हमें यह जीवन दिया, जिस शक्ति के द्वारा यह स्वांस इस शरीर में चलता है, सचमुच में यह उसका कितना बड़ा आशीर्वाद है, यह हम भूल जाते हैं। परन्तु अंतिम समय में हमें याद आती है, जब हमें स्वांस लेना मुश्किल हो जाता है।

प्रकृति का रूप ही यही है। धीरे धीरे जब यह प्राण इस शरीर से जाने लगता है, निकलने लगता है, तब आदमी के दिमाग में बात आती है कि जिस स्वांस को वह हरदम लेता रहता था, जिसके बारे में उसने अपनी जिन्दगी में दोबारा सोचा तक नहीं, वह एक और मिल जाये। जिन्दगी में जिसे उसने इतनी मुफ्त चीज समझी, उसके लिए मनुष्य तड़पता है कि एक और, एक बार और मिल जाय। और सारे शरीर से, जितनी भी मनुष्य में ताकत है वह इस स्वांस को पाने का प्रयत्न करता है। मुफ्त में मिले स्वांस की कीमत मनुष्य ने समझा नहीं। यह नहीं समझा कि परमात्मा ने स्वांस रूपी पूंजी, इस जीवन के रूप में मनुष्य को उपहार स्वरूप दिया है। इस पूंजी से जीवन रूपी खेती में वह चाहे तो परमानन्द, ब्रह्मानन्द की अनुभूति का आनन्द ले सकता है और चाहे तो संसार के भोग विलास में डूब सकता है। परमात्मा ने यह निर्णय मनुष्य के ऊपर छोड़ रखा है कि अपने जीवन में वह क्या प्राप्त करना चाहता है और क्या प्रयत्न करता है। सांसारिक भोग विलासिता को-माया को प्राप्त करने के लिए भी मनुष्य को मेहनत करनी पड़ती है और परमानन्द की प्राप्ति के लिए 'नाम' की खेती करने के लिए भी मेहनत करनी पड़ती है। मनुष्य के सामने दोनों चीजें माया और ब्रह्म उपस्थित हैं। चुनना उसे है- अपने जीवन के लिए। माया के साथ जुड़कर भोगों में डूबना चाहता है या अपनी पूंजी ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के लिए ब्रह्म के साथ लगाना चाहता है।

संसार में कुछ मनुष्य ऐसे भी दिखते हैं जो अक्सर यह कहा करते हैं कि संसार में जितने भी अच्छे अच्छे पदार्थ हैं, वे सब हमारे लिए हैं और हमारी हीं जरूरत के लिए ईश्वर ने रचे हैं। उनको अगर हम नहीं भोगेगें तो कौन भोगेगा? इसे भोगने में कोई पाप नहीं है। यदि ऐसे लोगों से पूछा जाए कि भाई, मान लिया संसार के पदार्थ सब तुम्हारे लिए है और तुम्हारे हीं खातिर ईश्वर ने बनाए हैं परन्तु तुम किस लिए बने हो? इसका उत्तर उनके पास नहीं है। यह सत्य है कि संसार के सारे पदार्थ मनुष्य हीं के लिए हैं। भोजन इत्यादि वस्तुएं इसके खाने के लिए है, कपड़े इसके पहनने के लिए है और पशु इसकी सेवा के लिए है जो विना किसी कामना के सेवा के लिए तैयार खड़े हैं। परन्तु जिस प्रकार सृष्टि के बाकी जीव-जन्तु आज्ञा के अन्दर रहते हुए अपना धर्म निभा रहे हैं, क्या मनुष्य ने भी अपने धर्म के उपर

दृष्टि डाली है या केवल खाने पीने के खातिर हीं संसार में आया है? अतः अपने दिल में विचार करना चाहिए कि मनुष्य जीवन का लक्ष्य क्या है? संतों ने कहा है कि यह शरीर जीव का नौकर है और जीव इसका मालिक है। यह शरीर जीव की सेवा के लिए मिला है, परन्तु यह गलती से शरीर की सेवा में लग गया है क्योंकि जितने भी कार्य मनुष्य से होते हैं वे शरीर हीं के निमित्त होते हैं। सब में शरीर हीं के पालन पोषण का ख्याल आता है। आत्मिक उन्नति का एक भी कार्य नहीं होता। यदि विचार दृष्टि से देखा जाए तो इस जीव के ऊपर शरीर ने ऐसा पर्दा डाल दिया है कि जीव उसमे ढ़क गया है और इसे अपने आप की भी सुध नहीं रही। शायद इसिलिए कबीर दास जी ने कहा–

'मोहे ऐसा सुझे नैय्या में नदीया डूबी जाये'

अर्थात् आत्मा नदी है और शरीर नाव है और मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि नाव में नदी डूब रही है। भाव यह है कि शरीर में आत्मा गुम हो गई है। मनुष्य के सब व्यवहार में शरीर की प्रबलता दिखाई देती है। इसी का नाम अज्ञान है, जिसको दूर करने के लिए संतों का उपदेश होता है।

संसार में प्रत्येक काम के लिए खास समय मिला होता है। खाने पीने का समय दिन में एक या दो बार आता है। त्योहार का समय वर्ष में एक या दो बार मनुष्य देखता है। व्याह शादी, संतान उत्पन्न होने आदि का वक्त समस्त जीवन में दो चार बार आते हैं, परन्तु एक समय ऐसा है जो संतों के अनुसार लाखों, करोड़ों जीवन व्यतीत हो जाने के पश्चात आता है। वही मनुष्य के लिए यह समय है। इसलिए इसके अन्दर अचेत रहना मुर्खता होगी।

कबीरदास जी कहते हैं कि–

'कहता हूँ कहे जात हूँ, कहे बजाऊँ ढ़ोल।
स्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल।'

अर्थात् लोगों से मैं बार बार कह रहा हूँ, ढ़ोल बजा बजा कर (चिल्ला चिल्ला कर) लोगों को समझा रहा हूँ कि मनुष्य जीवन को पाकर स्वास रूपी पूंजी को मत खोओ, यह अमुल्य पूंजी है। तीनों लोक के मालिक हो जाने पर भी तुम अपना समस्त राज्य देकर एक स्वांस को खरीद नहीं सकते हो, यह स्वांस इतना बहुमुल्य है, अतः चेतो।

भगवान राम ने तो खुले शब्दों में चेतावनी दे दी है कि-

'बड़े भाग्य मानुष तनु पावा,
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा,
पाइ न जेहिं परलोक संवारा।
सो परत्र दूख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईश्वरहि मिथ्या दोष लगाई।।'
'एहि तन कर फल विषय न भाई।
स्वर्गऊ स्वल्प अंत दुखदाई।।
नर तनु पाइ विषय मन देहीं ।
पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं ।।
ताहि कबहूँ भल कहइ न कोई।
गुंजा ग्रहइ पर्स मनि खोई ।।
आकर चारि लच्छ चौरासी ।
जोनि भ्रमत यह जीव अविनाशी।।'

अर्थात् यह मनुष्य शरीर बड़े भाग्य से मिला है। सभी ग्रन्थों ने यही कहा कि यह शरीर देवताओं को भी दूर्लभ है। यह शरीर साधन का धाम है और मोक्ष का दरवाजा है। इसे पाकर भी जिसने परलोक न बना लिया, वह परलोक में भी दुखः पाता है, सिर पीट पीटकर पछताता है तथा अपना दोष न देखकर काल पर, कर्म पर और ईश्वर पर मिथ्या दोष लगाता है।

भगवान रामचन्द्र जी चेतावनी देते हुए कहते हैं कि हे भाई, इस शरीर के प्राप्त होने का फल विषय भोग नहीं है। (सांसारिक भोगों की तो बात हीं क्या) स्वर्ग का भोग भी बहुत थोड़ा है और अन्त में दुखः देने वाला है। अतः जो लोग मनुष्य शरीर पाकर विषयों में मन लगा देते हैं, वे मुर्ख अमृत को बदलकर विष ले लेते हैं। जो पारसमणि को खोकर बदले में काँच की गोली ले लेते हैं, उसे कभी कोई भला (वुद्धिमान) नहीं कहेगा। यह अविनाशी जीव चार खानों (अण्डज, स्वेदज, जरायुज और उद्भिज) और चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाता रहता है।

भगवान् राम ने इसके (मनुष्य शरीर) के गति के बारे में चेतावनी देते हुए कहा है कि-

‘जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाई।
सो कृत निन्दक मंदमति आत्माहन गठि जाइ।’

अर्थात् जो मनुष्य ऐसे शरीर रूपी साधन को पाकर (जो साधन का धाम है और मोक्ष का दरवाजा है) भी भवसागर से न तरे, वह कृतघ्न और मंद वुद्धि है और आत्महत्या करने बाले की गति को प्राप्त होता है।

इस चेतावनी से वुद्धि नहीं चेतता क्योंकि उसे तो अभिमान है, धन का, पद का, विद्या का, शक्ति का, सांसारिक परिवार का इत्यादि इत्यादि, परन्तु हृदय में एक टीस होती है कि कितना अच्छा होता, अगर मैं इस पर अमल करता, अपने जीवन को इसी प्रकार ढ़ाल लेता, उस ज्ञान की जानकारी मुझे भी होती तो मैं भी अपने जीवन को सफल बना लेता। जिस दिन से मनुष्य के अन्दर ऐसी इच्छा, ऐसी जिज्ञासा आनी शुरू होती है, ऐसा समझना चाहिए कि उसकी स्थिति बदल रही है। उसे ऐसे समय में सिर्फ सत्संग की जरुरत है ताकि उसके अन्दर की झोली जो मान्यताओं से पहले से हीं भरी पड़ी है, खाली होना शुरू हो जाए ताकि उस झोली में सत्संग रुपी फल भर पाए और भक्ति के मार्ग पर चलना प्रारम्भ कर दे। उसके भी जीवन में सद्गुरु का पदार्पण हो ताकि उसे सच्चा ज्ञान प्राप्त हो सके और सद्गुरु को पाने के लिए, उसकी खोज करे, इसमें कोई भी लाज शर्म मनुष्य को नहीं करनी चाहिए क्योंकि लाज शर्म से यह चीज प्राप्त नहीं हो सकता और जीवन भवसागर में हिचकोले खाता रह जायगा।

एक फकीर ने कहा है कि-

‘नर तन पाय यत्न कर ऐसा,
जिससे वह करतार मिले।
ऐसी उत्तम जून पदारथ,
फिर नहीं बारम्बार मिले।’

अर्थात् इस मनुष्य शरीर को पाकर कुछ ऐसा यत्न करना चाहिए जिससे मालिक की भक्ति हाथ आए और उस परम पिता परमेश्वर के चरणों का मिलाप हो क्योंकि ऐसा उत्तम और अनमोल जनम बारम्बार मिलने का नहीं है। एक संत ने इस प्रकार भी कहा-

‘दो दिन जग में जीना है,

इतने पर क्यों इतराते हो।
मेरी काया मेरी माया,
शोर मचाते जाते हो।।
साथ नहीं हरि नाम लिया,
और गफलत में दिन रात कटे।
काया भी बदनाम करी,
अफसोस कि खाली हाथ चले।।'

संत कहते हैं कि ऐ जीव, इस संसार में केवल दो दिनों का जीवन है। इस दो दिन के जीवन में तू किस बात पर फूला फिरता है और कहता है कि यह मेरा शरीर है, यह मेरा धन है, मेरा परिवार है और मैं इन सब का मालिक हूँ, सो यह तेरी बड़ी भूल है। तेरी अपनी वस्तु तो केवल एक भगवान का 'नाम' था उसको तो तूने साथ लिया नहीं और दिन रात अचेतता की अवस्था में बीता दिए। इसलिये तेरी हालत पर अफसोस है कि तूने इस मनुष्य चोले को भी बदनाम किया और अन्त में खाली हाथ संसार से चल बसा।

अतः इस जीवन में इस जीव को संतों की संगति चाहिए ताकि उसे सत्संग रूपी खाना मिल सके और अपनी दूर्बलता को हटा कर वह सद्गुरु की खोज कर सके क्योंकि 'नाम' का ज्ञान पाने के लिए 'तत्व ज्ञान' पाने के लिए, 'ब्रह्मज्ञान' जानने के लिए, 'सत्य' को पहचानने के लिए ऐसे महापुरुष की आवश्यकता मनुष्य को है जिसके लिए रामायण में लिखा गया है कि

'जेहि जानत तेहि देही जनाई।
जानत तुमहिं तुमहिं होय जाई।।'

अर्थात् उस 'अक्षर', उस 'शब्द', उस 'नाम' का बोध वही करा सकता है जो स्वंय उसकी जानकारी रखता हो। जब वे संत, महापुरुष हमारे जीवन में मिलेगें तो मेरे ऊपर भी उनकी कृपा होगी और मनुष्य को 'ज्ञान' के द्वारा, ज्ञान का उपहार देकर लखा देगें, अपने हृदय के अन्दर बैठे उस प्रभु से मुलाकात, साक्षात्कार करा देगें, जिस साक्षात्कार से मनुष्य उस 'नामी' के साथ घट के अन्दर बैठे अपने भगवान के साथ एकाकार हो जाता है और विलक्षण अनुभव में जुट जाता है। 'नामदीप' की लौ चिंगारी से शुरू होकर

अलौकिक प्रकाश का रूप ले लेती है जहाँ माया का कोई स्थान हीं नहीं और सर्वत्र ब्रह्म ही ब्रह्म का साम्राज्य है।

इस ज्ञान की जानकारी देने बाले साधू-संत के लिए रामायण में तुलसीदास जी की वाणी है-

'विधि हरि हर कवि कोविद वानी।
कहत साधु महिमा सकुचानी।।
सो मो सन कहि जात न कैसे।
शाक वनिक मनि गुन गन जैसे।।'

अर्थात् विधि (ब्रह्मा), हरि (विष्णु), हर (शिव), कवि (कविश्वर), कोविद (पंडित), वानी (शारदा, सरस्वती) ये सब भी साधु, संत की महिमा का वर्णन करने में सकुचाते हैं, अर्थात् इनका भी साहस नहीं पड़ता कि साथु-संत की महिमा और बड़ाई कह सकें। फिर मेरी क्या शक्ति है कि उनकी महिमा का अंत पा सकूं। भला साग और मूली, गाजर को बेचने वाला, हीरे और मोतियों का दाम क्या लगा सकता है?

जब साधु संतों की महिमा इस प्रकार गाई गई तो सद्गुरु तो ज्ञान के दाता हैं, उस परमात्मा से मुलाकात कराने के भेदी हैं, उनकी महिमा तो अपरम्पार है।

'गुरू गोविन्द दोऊ खड़े, काको लागूं पॉव।
बलिहारी गुरु आपनो, जिन गोविन्द दियो लखाय।।'

गुरु तो गोविन्द के भेद बताने वाले हैं, इसलिए ऐसे गुरु महाराज जी को प्रणाम है।

कबीरदास जी ने उस ज्ञान दाता सद्गुरु के लिए लिखा कि तीर्थ पर जाने से एक फल मिलता है और संतों की संगति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार फलों की प्राप्ति होती है (धर्म अर्थात मनुष्य का जीवन नियमानुसार हो, अर्थ अर्थात प्रयोजन, मतलब, काम कहते हैं कामना या इच्छा को और मोक्ष का अर्थ है मुक्ति या आजादी)। परन्तु जो जीव सद्गुरु के शरण में पहुँचता है अर्थात सद्गुरु के द्वारा 'ज्ञान' प्राप्त करता है उसको बेअन्त फल मिलते हैं, जिसका कोई हिसाब किताब नहीं।

'तीर्थ गए तो एक फल।
संत मिले फल चारि।।

सद्गुरु मिले अनेक फल।
कहे कबीर विचार।।'

स्वामी चरणदास जी ने कहा है-

'गुरु समान तिहुँ लोक में, और न दीखे कोय।
'नाम' लिये पातक नसे, ध्यान किये 'हरि' होय।।
गुरु ही के परताप स्यों, मिटे जगत की व्याध।
राग द्वेष दुःख न रहे, उपजे प्रेम अगाध।।
गुरु के चरणन में धरो, चित्त वुद्धि मन हंकार।
जब कछु आपा न रहे, उतरे सब हीं भार।।
बलिहारी गुरु आपने, तन मन सदके जाऊँ।
जीव व्रह्म छिन में कियो, पाई भूली ठाऊँ।।'

अर्थात् गुरु के समान दाता तीनों लोकों में कोई भी नहीं दिखता, जिनके 'नाम' रुपी ज्ञान से सभी पापों का नाश होता है तथा ध्यान करने से, 'हरि' के दर्शन होते हैं। गुरु के प्रताप से हीं मेरे सारे विपत्तियों का मिटना संभव हुआ तथा मेरे मन के अन्दर के राग, द्वेष और दुःख इत्यादि का अन्त हुआ और उसके स्थान पर प्रेम की उत्पत्ति हुई। ऐसे गुरु पर मैं तन मन से बलिहारी हूँ जिन्होंने हमारे चित्त को अपने चरणों में लगाकर तथा मन, बुद्धि, अहंकार आदि को चरणों में अर्पित कराकर अर्थात शरीर के सारे भार उतारकर जीव को व्रह्म का साक्षात्कार करा उस अनन्त में विलिन कर दिया। गोस्वामी तुलसीदास जी ने गुरू की महिमा गाते हुए लिखा-

'श्री गुरु पद नख मणि गण ज्योति।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।
दलन मोह तम सो सप्रकासू।
बड़े भाग्य उर आवहिं जासू।।'

अर्थात् गुरु के चरण कमलों के नाखूनों का प्रकाश अनन्त मणियों की ज्योति के समान है। उनके सुमिरण और पूजन करने से मोह का अन्धकार दुर होता है और दिव्य दृष्टि पैदा हो जाती है। वे जीव बड़े भाग्यवान हैं जिनके हृदय में गुरु के चरणों का ध्यान आता है। वे फिर कहते हैं-

'गुरु पद रज मृदु मञ्जुल अञ्जन।
नयन अभिय द्दग दोष विभंजन।।

तेहि कर विमल विवेक विलोचन।
वरणौं राम चरित भव मोचन।।'

अर्थात् गुरू के चरण कमलों की जो रज अर्थात धुलि है, वह सुन्दर कोमल अंजन है जो नेत्रों के लिए अमृत का असर रखता हुआ उनके समस्त रोगों को दूर करता है। गोस्वामी जी कहते हैं कि मैं उसी गुरु के चरण रज रूपी अन्जन से अपने नेत्रों को शुद्ध और साफ करके अर्थात अपनी आँखों को निरख परख वाली आंखें बनाकर श्री रामचन्द्रजी महाराज के चरित्र का वर्णन करता हूँ, जो संसार का भय दूर करने वाले हैं। भाव यह है कि सब गुरु ही के चरणकमलों का प्रताप है, वर्ना मुझमें इतनी शक्ति कहाँ है।

श्रीमद्भागवत में राजा रहुगण के प्रति महात्मा जड़भरत कहते हैं कि-

'रहुगणैतत्तपसा न याति, न येज्यया निर्वपणाद गृहाद्वा।
नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्ये-विर्ना महत्पाद रजोऽभिषेकम।।'(५/१२/१२)

अर्थात् हे रहुगण, महापुरुषों के चरणबद्ध की धूलि में स्नान किये बिना केवल तप, यज्ञ, दान, गृहस्थ-धर्मपलन और वेदाध्ययन से तथा जल, अग्नि और सूर्य की उपासना से उस 'परम तत्व' का ज्ञान नहीं प्राप्त होता।

श्रीमद्भागवत में भगवान उद्धव के प्रति कहते हैं कि-

'यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम।
शीतं भयं तमोऽप्येति साधून संसेवतस्तथा ।।
अन्नं हि प्राणिनां प्राणा आर्तानां शरणं त्वहम।
धर्मो वित्यं नृणं प्रेत्य सन्तोऽर्वाग विभ्यतोऽरणम।।'

अर्थात् हे उद्धव, जिस प्रकार भगवान अग्निदेव का आश्रय लेने पर शीत, भय और अन्धकार का नाश हो जाता है, उसी प्रकार संत महात्माओं की सेवा करने से सम्पूर्ण पाप रूपी शीत, जन्म-मृत्यु रूपी भय और अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश हो जाता है। जैसे प्राणियों का जीवन अन्न है और दुखी मनुष्यों का आश्रय मैं हूँ तथा मरने पर मनुष्यों का धर्म हीं धन है, वैसे हीं जन्म-मरण से भयभीत हुए व्याकुल पुरूषों के लिए संत महात्माजन परमाश्रय हैं। देवर्षि नारद जी भी कहते हैं -

'महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगभ्योऽमोधश्र्च' (ना ० सुत्र ३९)

अर्थात् महापुरुषों का सङ्ग दुर्लभ्य, अगम्य और अमोध है। अतः

'तदेव साध्यताम, तदेव साध्यताम।।' (ना० सुत्र ४२)

अर्थात् उस सत्संग की हीं साधना करो, सत्सङ्ग की हीं साधना करो।

सत्संग हमें बचाता है माया, मोह, काम, क्रोध, लोभ और अहंकार रूपी चोर से और जोड़ता है ज्ञान के साथ। माया की, मोह की, काम की, क्रोध की, लोभ की तथा अहंकार की प्रकृति यह है कि उसकी एक बूंद हीं सारे समाज को खराब कर सकता है। थोड़ा सा अहंकार कितने हीं लोगों के लिए कष्टदायक हो सकता है। थोड़ा सा लोभ, थोड़ा सा लोभ समाज में दरार पैदा कर सकता है क्या इन सब की प्रकृति यही है। अतः अगर क्रोध करना है तो अज्ञानता से क्रोध करना चाहिए। अज्ञानता के विरूद्ध क्रोध करना चाहिए। दुश्मनी अगर करनी है तो उन चीजों से दुश्मनी करनी चाहिए जो सत्य के मार्ग से हमें अलग करती है। अगर किसी चीज पर मोहित होना है तो दुनिया की बातों पर नहीं बल्कि ज्ञान से मोह करना चाहिए, 'ज्ञान' से प्रभावित होना चाहिए। सचमुच में ज्ञान जो है, वह वुद्धि की सीमा में नहीं है, और मन की सीमा में भी नहीं है। वह हृदय की बात है। हमारे साथ एक तो मन की दुनिया है, मन ने हीं यह दुनिया रची, मन ने हीं इस दुनिया के नियम बनाए हैं। मन हीं इन नियमों की निन्दा करता है, और मन हीं कहता है कि ये जो सारे रीति रिवाज बने हैं वे सब गलत हैं। मन हीं इन सब चीजों के पीछे पड़ने के लिए मनुष्य को विचलित करता है और मन हीं कहता है 'क्यों पड़ गया'? तो मन की दुनिया ऐसी है जिसमे प्रगति नहीं, जिसमें प्रगति के नाम पर सब कुछ पीछे की ओर जाता है। मन की दुनिया में मोह है, माया है, काम है, क्रोध है, मद है, लोभ है। यदि मन की बात को लेकर कार्य करेंगे तो उसमें दुःख होगा और यदि हृदय की बात को लेकर कार्य करेंगे तो उसे आनन्द मिलेगा। यह हृदय भी मनुष्य का एक हिस्सा है और इसकी दुनिया अन्दर में है। अतः अपने इस हिस्से को, हृदय को भी जानना, समझना मनुष्य का कार्य है। बिना हृदय को समझे मनुष्य अधुरा है। मन और वुद्धि का प्रेम तो एक खेल है। हृदय का प्रेम खेल नहीं है। हृदय का प्रेम सच्चा प्रेम है। हृदय का प्रेम असली प्रेम है। हृदय का प्रेम अटूट प्रेम है।

'ज्ञान' हमें हृदय की ओर मोड़ता है, वह हमें तैयार करता है अपने अन्दर देखने के लिए जहाँ हम सब कुछ देखते हैं। जब हम निगाह को लेकर नहीं, बल्कि देखने की शक्ति को लेकर अपने आप को देखेंगे, जैसा कि हम

हैं, तब हम एक असलियत को देखना आरम्भ करेंगे। इस हमेशा बदलते हुए ढ़ांचे में, इस हमेशा परिवर्तनशील सांचे में हम देखेंगे कि एक चीज है जो कभी नहीं बदलती। एक ऐसी तलाश है जो सार्वभौमिक है, हर जगह पायी जाती है। वह तलाश भाषा से परे की चीज है। वह हर चीज से परे की चीज है-जहाँ हम मौन हो सकते हैं। तब हम अपने हृदय को सुनना प्रारम्भ करेगें। तब हम उन ध्वनियों को सुनेंगे जो हमारी है, हमारे लिए है। उस 'अक्षर' के साथ जूड़ी ध्वनि, उस 'नाम' के साथ जूड़ी ध्वनि, जो बराबर हमारे साथ अन्दर घट में, हृदय में बैठा रहा है। यह ध्वनि बाहरी संसार के लिए नहीं है। इन ध्वनियों के साथ जूड़ने पर, इन ध्वनियों को सुनने पर, इन ध्वनियों का अनुभव करने पर हम स्वतः प्रशंसा की प्रशंसा करना आरम्भ करेगें। महिमा गाना शुरू करेगें कि वाह, बनाने बाले, तुने क्या चीज बनाई, तू वास्तव में सूरीला है, सुन्दर है, सबसे अलग है, तेरी तुलना किसी से नहीं की जा सकती, तू अलबेला है, तू हीं प्रकृति है, तू हीं प्रकृति का कारण है, तू हीं फूल है, तू हीं सुगंध है, तू हीं नाम है, तू हीं नामी है, तू हीं प्रकाश है, तू हीं प्रकाशमान है, तेरी सत्ता अब मेरी समझ में आई कि तू क्या है। तू धन्य है, तू धन्य है, तू धन्य है। इसकी प्रशंसा के लिए मेरे पास शब्द नहीं है। सारे वर्णमाला के अक्षर उनके गुणगान में शेष हो जायेंगे, परन्तु उनका गुण, उनकी महिमा पूरी नहीं होगी। वह आनन्द का भंडार है, कल्पनाओं से परे है। जिस 'ज्ञान' की चर्चा हो रही है, उस 'ज्ञान' को पाने के बाद अभ्यास के द्वारा जब हम अनुभव करते हैं, अपने हृदय के अन्दर, उस विलक्षण का, तो बात समझ में आती है कि वुद्धि से परे की चीज क्या है, कल्पना से परे की चीज क्या है? क्यूँ धर्म ग्रंथों में ऐसा लिखा है कि यह 'ज्ञान' मन और वुद्धि से परे की चीज है? इस अनुभव की प्राप्ति के बाद समझ में बात आती है कि स्वर्ग कहां है? स्वर्ग तो मेरे अन्दर है। वहाँ एक अचलता है, शांति है, सुकून है और है एक आनन्दपूर्ण हृदय। यही स्वर्ग है। यही सब कुछ है, ये ही स्वर्ग के घटक हैं। इस बात की समझदारी अब होती है कि कम से कम 'ज्ञान' हमें एक ऐसी जगह ले जाता है जहाँ वह मन हम पर हावी नहीं होता। जहाँ मन आ ही नहीं सकता। वह मेरी अपनी जगह है। वहाँ बैठना मैं पसन्द करूंगा। जिस स्थान से मैं अपरिचित था, जिस वस्तु को मैं नहीं जानता था, हालाँकि वह बराबर मेरे साथ रहता था, उसे जानने के

बाद 'ज्ञान' की प्रक्रिया से बराबर जूड़ने की अभिलाषा होगी। अन्तर्मुखी क्या चीज है, समझ में आयगा।

'नाम' क्या है, जिसकी चर्चा धर्मग्रंथों में इतनी की गई है फिर भी जिसे व्यक्त नहीं किया जा सका है, उसका रहस्य क्या है। 'नामदीप' की लौ में बैठना कितना सुन्दर है, कितना अनुपम है, कितना विलक्षण है 'ज्ञान' द्वारा 'नामदीप' को जला स्वयं उसमें बैठकर अनुभव करने पर मनुष्य समझ पाता है। उस 'नामदीप' की लौ में प्रयत्क्ष होता है कि बिना एक लय-ताल पैदा किये कोई चीज नैसर्गिक रुप से हमारे अन्दर लय-ताल बद्ध हो रही है। किसी तालमापी यंत्र की तरह नहीं, जिससे ताल का पता लगता है, बल्कि अपनी, उसकी खुद की लय-ताल होती है, स्वतः अपना स्रोत होता है, अपना प्रवाह होता है।

अतः उन धर्मग्रंथों का मैं कृतज्ञ हूँ जिसने मेरे हाथों का स्पर्श स्वीकार किया। धर्मग्रंथों में वर्णित महापुरुषों के उन शब्दों का भी मैं कृतज्ञ हूँ जिसके अध्ययन में मेरे नेत्रों ने शीतलता का अनुभव किया, वुद्धि को झटका लगा और हृदय में प्रेम की जिज्ञासा जगी। मैं अपने अन्दर जगे जिज्ञासा का भी कृतज्ञ हूँ जिसके द्वारा जीवन के रहस्य को जानने का मैं एक विद्यार्थी बना। मैं अपने अन्दर उठे प्यास का भी कृतज्ञ हूँ जिसके कारण मुझे 'सद्गुरु' रूपी जलाशय के पास पहुँचने का अवसर मिला। मैं 'सद्गुरु' के प्रति अपनी कृतज्ञता शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता हूं जिन्होंने 'ज्ञान' का बहुमुल्य उपहार देकर इस जीवन को सफल बनाया। मैं अपने इस जीवन का भी कृ तज्ञ हूँ जिसने इस वर्तमान समय में मेरे लिए 'ज्ञान' पाना सम्भव बनाया, जिसके अभ्यास के द्वारा 'नाम' के रहस्य को जानकर कागज के कुछ पृष्टों पर संत-महात्माओं और महापुरुषों के बचनों के साथ एक छोटा सा अनुभव प्रगट करने का मुझे भी अवसर मिला।

अन्ततः मैं परमपिता परमात्मा, उस आदिशक्ति का आभारी हूँ जिसने एक अधम जीव को मनुष्य का जीवन कृपा स्वरुप प्रदान किया और अपनी सत्ता की अनुभूती करने का सुअवसर इस जीवन में दिया।

अतः उस परमात्मा के गुणगान के साथ इस 'नामदीप' विषय पर शब्दों को जोड़ने का कार्य यहीं समाप्त करता हूँ, इस आशा के साथ कि इन शब्दों के संग्रह को जिसे भी पढ़ने का अवसर मिले, वे सोचें, विचारें और

हृदय के अन्तः पटल पर उठने वाले जिज्ञासा को जागने का मौका दें और इस जीवन के रहस्य को इसी जीवन में जानने का प्रयत्न करें।

अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः।।
अज्ञान तिमिरांधस्य ज्ञानाञ्जनशलाक्या।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः।।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

–अलख निरंजन

व्यक्तित्व दर्पण

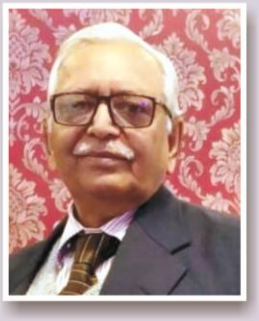

नाम - अलख निरंजन प्रसाद सिन्हा

जन्म - 10 दिसम्बर 1949, गया बिहार

माता - स्व. श्रीमती सुशीला देवी

पिता - स्व. श्री कृष्णा प्रसाद सिन्हा

शिक्षा - स्नातक (विज्ञान), स्नातक (इंजिनियरिंग), एम.बी.ए., चार्टेड इंजिनियर

पता - ई ब्लॉक, ई-4771/31, राजेन्द्र पार्क, गुरुग्राम, हरियाणा

कार्य - उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार के अधीनस्थ उद्योग से अवकास प्राप्त।

- स्टील प्लान्ट, थर्मल पॉवर प्लान्ट, ऑयल रिफायनरी, रेल्वे वैगन इत्यादि बनाने का विशेष अनुभव

- समाज सेवा में रुचि एवं हिन्दी भाषा के उत्थान में योगदान

संपर्क - 9910648535

ई-मेल - anpsinha@gmail.com

प्रकाशन - जीवन किसलिए (काव्य संग्रह) अंतरा शब्दशक्ति प्रकाशन।

सम्मान - अंतरा शब्दशक्ति साहित्यकार स्वाभिमान सम्मान 2019

यदि आप अंग्रेजी में हस्ताक्षर करते हैं तो निवेदन है कि 'हिन्दी में हस्ताक्षर करें', आपकी यह छोटी-सी कोशिश हिन्दी को राजभाषा से राष्ट्रभाषा बनाने में अमूल्य योगदान देगी ।

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
१५, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी, जि. बालाघाट (म.प्र.) पिन ४८१३३१,
संपर्क- ९४२४७६५२५९, अणुडाक: antrashabdshakti@gmail.com
978-93-5372-072-8
मूल्य 80/-
शब्द सुगंध